ससार में
नरक
बीवी के लेक्चर
अमीन सलोनवी
Hasan

संसार में नरक

या

बीवी के लेक्चर

लेखक

श्रीअमीन सलोनवी

प्रकाशक

(राजा) रामकुमार-प्रेस-बुकडिपो,

उत्तराधिकारी

नवलकिशोर-प्रेस-बुकडिपो, लखनऊ

प्रथम संस्करण] १९५६ ई० [मूल्य २)
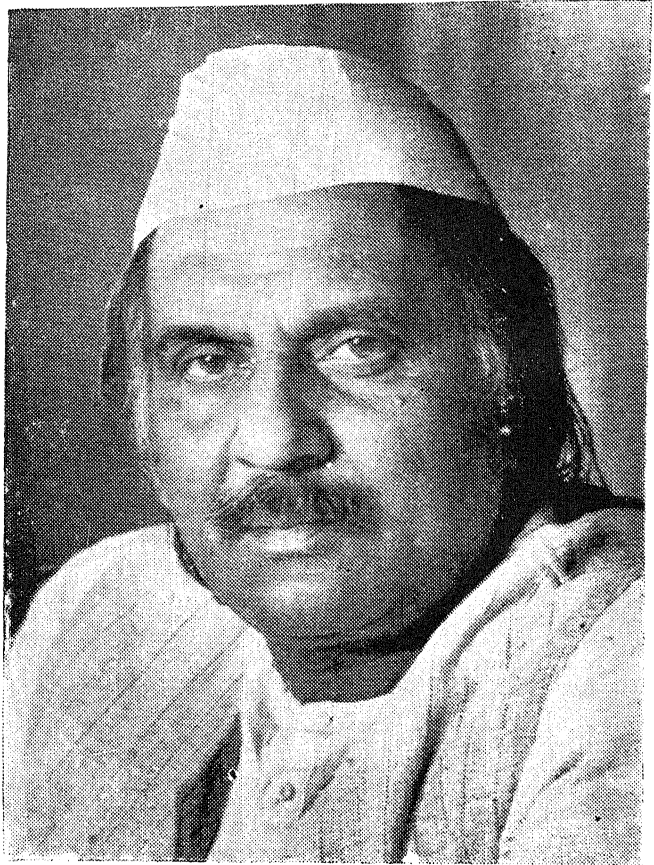
उत्तरप्रदेश के प्रधान मंत्री, उच्चकोटि के विद्वान् और सहृदय साहित्यिक
मानवीय श्रीसम्पूर्णानन्दजी

लखनऊ

फ़रवरी ५, १९५६

मैं 'संसार में नरक' को उसके उर्दू कलेवर में देख चुका हूँ। पुस्तक मुझे पसन्द आई। श्री अमीन सलोनवी ने उन गृहस्थियों का अच्छा चित्र खींचा है जहाँ गृहलक्ष्मी के लड़ने का स्वभाव घरवालों के जीवन को दूभर कर देता है। ऐसे घरों में सचमुच नरक का नित्य निवास रहता है। लिखने का ढंग ऐसा है कि भाषा कभी मीठी चुटकी से तीव्र नहीं होने पाती। निश्चय ही जिस नरक का चर्चा उन्होंने किया है उसके सिवा एक और नरक भी होगा जिसका सर्जन पति का लड़ाका स्वभाव करता होगा और जिसमें गरीब पत्नी का जीवन रोने में ही कटता होगा। परन्तु श्री अमीन सलोनवी पुरुष हैं। यह आशा नहीं की जा सकती कि कोई पुरुष इस दूसरे नरक के अस्तित्व को स्वीकार करेगा। अस्तु, नरक के एक आधे का थोड़ा सा चर्चा पढ़कर ही हमको सन्तुष्ट होना होगा। पुस्तक मनोरंजन की दृष्टि से बहुत अच्छी है।

सम्पूर्णानन्द
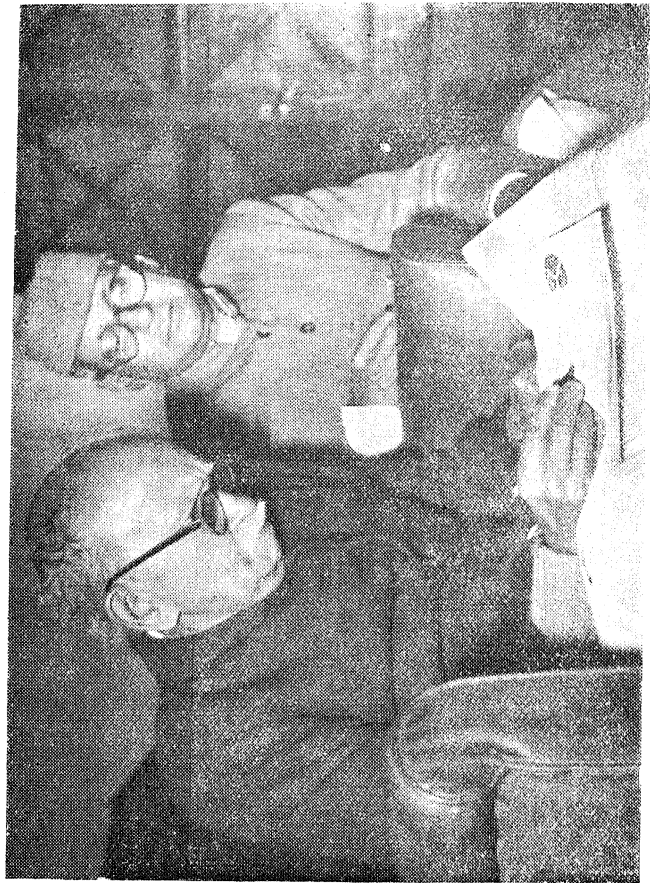
सम्पादकाचार्य पं० अंबिकाप्रसादजी वाजपेयी एम० एल० सी० के साथ
इस पुस्तक के लेखक श्री अमीन सलोनवी

हिंदी अखबारनवीसी के आचार्य भारतमित्र (कलकत्ता) और स्वतंत्र (कलकत्ता) के पुराने संपादक व हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी का आशीर्वाद—

श्री अमीन सलोनवी को मिले इन खुशकिस्मत लेक्चरों से पढ़नेवाले अपना दिल ही न खुश करेंगे, भाषा का भी मजा लूट सकेंगे। अमीन साहब की भाषा में न संस्कृत-शब्दों का अनावश्यक भार है, न अरबी-फारसी लफ्जों की बिला वजह भरमार। इसे कबीर के-से गुण प्राप्त हो गये हैं। हिन्दीवाले इन लेक्चरों की भाषा को सुविधापूर्वक हिन्दी और उर्दूवाले आसानी से उर्दू कह सकते हैं। बस, लेक्चर जैसे होते हैं, बहुत कुछ उसी रूप में सबके सामने पेश हैं। परमेश्वर करे, जैसे इनके भाग्य खुले वैसे ही औरों के भी खुलें।

आशा है, पुस्तक यथेष्ट लोकप्रिय होगी।

लखनऊ,
२४ फरवरी, १९५६ } अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

संसार में नरक

अवतारणा

कौन नहीं जानता कि इन्सान को दोजख[1] और जन्नत[2] से मरने के बाद ही काम पड़ता है। और कौन जानता है कि मरने के बाद क्या होता है और क्या नहीं होता; लेकिन जैसी करनी वैसी भरनी—यह एक मिसाल है। लेकिन मैं कहता हूँ कि इन्सान की जिन्दगी में एक ऐसा वक्त आता है, जब वह या तो मुकम्मल[3] दोजखी[4] हो जाता है या बिलकुल जन्नती[5]। मगर जो लोग बेअंकुस के हाथी होते हैं, उनके लिए सब बराबर है, और वे बेफिक्र हैं; लेकिन जिन लोगों को दुनिया में हकीकतन्[6] आराम की जिन्दगी की भी जरूरत है, वे जानते हैं कि किस तरह घर में दोजख और जन्नत बन जाया करती है। और यह कुछ एक ही पर मुनहसिर[7]

---

१ नरक। २ स्वर्ग। ३ पूरा। ४ नारकी। ५ स्वर्ग का अर्थात् देवता। ६ वास्तव में। ७ निर्भर।

नहीं है। बल्कि हरएक को भुगतना पड़ता है। न आप पर कोई इल्जाम[1] है और न मैं इसका जिम्मेदार हूँ। जो लोग एकआध नन्हे मियाँ के वालिद-मुहतरिम[2] हो जाते हैं, उनको यह अरमान[3] भी होता है कि किसी तरह उनके नन्हे मियाँ बढ़ें, पलें, फूलें-फलें, जवान हों और जल्दी से अपनी आँखों से उनका सेहरा भी देख लें। उसके बाद फिर फौरन् ही दूसरे नन्हे मियाँ की आमद का इंतिजार[4] करें। ज्यादातर उनकी यह ख्वाहिश[5] होती है कि किसी तरह नन्हे मियाँ के आते ही एक नये नन्हे मियाँ का मर्दुमशुमारी[6] में इजाफा[7] करें। बहरहाल ऐसा तो नहीं होता, लेकिन दो-एक नन्हे मियाँ एकआध साल में जरूर तवल्लुद[8] हो जाते हैं और फिर जब जरा वह नन्हे मियाँ जवान जहील[9] हो जाते हैं तो उन पर हरएक की नजर होती है कि उनकी जवानी क्या गुल खिलानेवाली है, नन्हे मियाँ किसे चाहते हैं, कहाँ जाते हैं। बस, इधर-उधर ताक-झाँक होने लगती है। जरा सा भी कोई मुखातिब हुआ, नक-सक,[10] घर-द्वार, रुपया-पैसा देखाभाला जाने लगा। और जब अच्छी तरह छान-बीन हो जाती है तो नन्हे मियाँ के लिए एक नन्ही दुलहन छाँटकर लाई जाती है। नन्हे मियाँ को कुछ खबर भी नहीं

---

१ दोषारोपण। २ पूज्य पिता। ३ अभिलाषा। ४ आने की प्रतीक्षा। ५ इच्छा। ६ मनुष्य-गणना। ७ वृद्धि। ८ उत्पन्न। ९ वयस्क। १० नख-शिख या चेहरा-मोहरा।

होने पाती, वाल्दैन[1] दूर ही से सब तय कर लेते हैं, जैसे कि शादी नन्हे मियाँ की नहीं, बल्कि उनके वाल्दैन व उम्मतीह[2] बरकात[3] की शादी होती है। भला देखिए, इतनी बड़ी बात चुटकी बजाते तय, फिर दो-चार जाड़ों, दो-चार गर्मियों के बाद इधर खेत कटने लगे और उधर नन्हे मियाँ की शादी की तैयारियाँ शुरू हो गईं। अपनी कमाई जो कुछ कि थी, वह तो थी ही, कुछ कर्ज, कुछ इधर से कुछ उधर से लेकर नन्हे मियाँ के सिर एक नन्ही दुलहन मढ़ दी गई। अब इस से क्या गर्ज, क्या सरोकार कि घर दोजख है या जन्नत, वाल्दैन तो अपने फर्ज[4] से सुबुकदोश हो गये, चलिए फुर्सत मिली।

इस तरह एक नन्हे मियाँ की शादी एक लाडली बेगम के साथ कर दी गई। नन्हे मियाँ के वाल्दैन बड़ी धूम-धाम से और बड़े चाव से बहू को ब्याह लाये, लेकिन एक ही साल में बहू ने वह खेल खेले कि आफत आ गई। बात-बात में हवा से लड़ती। सुसराल में हर छोटे-बड़े सबको अपनी जूती की नोक पर मार दिया। उसकी 'नौज'[5] और अबाई ने घर में हरएक के नाक में दम कर दिया। उठते-बैठते नसीब का रोना, सोते-जागते सास-ससुर को बुरा-भला कहना

---

१ मा-बाप। २ इष्टमित्र। ३ नाते-रिश्तेदार। ४ कर्त्तव्य। ५ एक तकियाकलाम औरतों का।

उसकी आदत हो गई। आखिरकार नन्हे मियाँ के वालदैन मजबूर[1] हो गये और एक दिन उन्होंने अपने नन्हे मियाँ से कह दिया कि बेटा, जियो-जागो और जहाँ रहो खुश रहो, जो कुछ हमारे पास है वह तुम्हारा ही है, और जो कुछ तुम कमाओ, खाओ-उड़ाओ। अब अच्छा हो होगा कि तुम अपनी इन मुसम्मात[2] को कहीं और अपने साथ अलग रखो। जो कुछ हमसे हो सकेगा, हम तुम्हें देते रहेंगे।

यह नन्हे मियाँ बेचारे किसी आफिस में मुलाजिम[3] थे। दफ्तरों में जैसी ड्यूटी होती है, वह तो हरएक को मालूम है। दिन भर अन्धे बैल की तरह हल में जुते रहना और शाम को भी कुछ काम अगर बाकी रह जाय तो घर ले जाकर बारह बजे रात तक माथा-पच्ची करना। यह नन्हे मियाँ भी इसी तरह दिन भर जुते रहते, सुबह नौ बजे दफ्तर जाते, और कभी ५ बजे और कभी ६ बजे शाम को घर वापस आते। मगर इस पर भी नन्हे मियाँ की नन्ही दुलहन का टेम्परेचर कभी नार्मल न रहा। नन्हे मियाँ बिलकुल अल्ला मियाँ की गाय थे। लड़ाई-दंगा तो दरकिनार, कभी उनसे किसी से तुन-फुन भी न हुई थी। घर-गिरस्ती के मामलों में भी बिलकुल कोरे थे। यह भी एक मुसीबत थी, जो उनके सिर आ पड़ी थी। बीवी की यह हालत कि अगर नौकर भी गलती करे तो नन्हे मियाँ की जान पर

---

१ विवश। २ पत्नी। ३ नौकर।

बीते, बावर्ची से कुछ न बन पड़े तो उसी की मौत बेचारे यह नन्हे मियाँ एक अजीब जंजाल में फँस गये थे। महीना खतम होते ही बीवी के सामने अपनी पूरी तनख्वाह इस तरह लाकर रख देते, जैसे महात्मा गांधी को पबलिक की तरफ से थैली पेश की जाय, लेकिन बीवी फिर भी कुत्ते की दुम की तरह टेढ़ी ही बनी रहतीं। आहिस्ता[1]-आहिस्ता ये झगड़े ऐसे बढ़े कि साइमन कमीशन की जरूरत पड़ गई। नन्हे मियाँ ने तो बहुत चाहा कि ये झगड़े किसी तरह खतम हो जायँ, लेकिन इस बेचारे के किये क्या होता, बीवी साहबा तो पीठ पर हाथ ही न रखने देती थीं।

एक दिन नन्हे मियाँ जरा दफ्तर से देर में आये। काम बहुत था। आठ बजे घर पहुँचे। फिर क्या था। बीवी तो पहले ही से ई० आई० आर० का अंजन बनी बैठी थीं, देखते ही बकबक करने लगीं। नन्हे मियाँ का एक पाँव चौखट के बाहर था और एक अन्दर कि इधर से बीवी के लेक्चर शुरू हो गये।

———

१ धीरे-धीरे।

दफ्तर से वापसी पर

मैं भला तुमसे पूछती हूँ कि आहिस्ता-आहिस्ता यों ही तुम देर से रात गये आया करोगे, तो मेरा जीना कैसे होगा ? आपके दरवाजे पर कोई चौकी-पहरा तो लगा नहीं है और न आपके पास इतना रुपया है कि किसी चौकीदार को नौकर रख सकें। बस, एक दिन कोई भला-बुरा मकान में घुस आयेगा और यह जो टूटा-फूटा घर-गिरस्ती का सामान है, लेकर चलता होगा, और मेरा भी गला घोंट देगा। आपका क्या जायगा ? आप तो यह चाहते ही हैं। जिसकी जान जायेगी, उसकी जायेगी, आपकी बला से ! बहुत करोगे, दो-चार दिन रो लोगे। फिर उम्र भर कौन किसको रोया करता है और कौन किसे याद करता है ? और फिर आपके अच्छे अब्बा-अम्मा के सिर से एक बला भी टल जायेगी। घी के चिराग जलेंगे ; क्योंकि वह तो मनाते ही होंगे। रहे आप, सो आपको भी मेरी ही जैसी कोई नसीबों-जली दूसरी मिल जायगी। मगर मियाँ मुँह धो रखो ! कोई बात भी न पूछेगा कि किस खेत की मूली हो।

बाप रे बाप ! पहाड़ सा दिन बीता, शाम हुई, चार बजे, पाँच बजे, और अब रात के आठ बजते हैं, इतने बड़े घर में मैं अकेली ! हाय, क्या कोई मर्द ऐसा भी होगा, जैसे तुम हो।

तुम कहते हो—बाहर करीम रहता है और अन्दर शुबरातन। ठीक है, मगर यह भी देखा है कि करीम को दिन में भी सुझाई नहीं देता ! जब चलते हैं तो सामने की चीज नहीं नजर आती, बैठे हैं तो जैसे अफीम की पीनक में हैं। उसे तो खबर भी न होगी कि यह मकान में चोर दाखिल[1] हुआ। उचककर एक मुट्ठी से उसका गला दबा देगा। एक को दो, दो को चार बहुत काफी होते हैं। अब रह गई मुई शुबरातन। सो उससे तो मेरी तौबह है। दिन में तो वह कमबख्त अपने घर के चक्कर लगाती है और खुदा जाने कहाँ-कहाँ जाती है। कौन से उसके दोस्त-यार हैं, जिनसे वह मिलने जाया करती है। उसको भला पराये घर की क्या परवाह ! अगर उसके सामने भरा घी का घड़ा ढुलक जाये तो भी उसको परवाह न होगी। गालों में पान भरे चमक-चमककर चलती है। अभी कल ही की बात है कि बिल्ली ने दूध की हाँडी गिरा दी, लेकिन इस बंदी ने मुँह से 'बिल' न किया। और क्यों करती ? क्या वह चौकीदार है ? वह तो सिर्फ खाना बनाने की नौकरी करती है। जली-भुनी

---

१ प्रविष्ट।

रोटियाँ—बे नमक साग, सालन, भाजी और अधकच्ची दाल पकाना उसका काम है। उसकी जूती को क्या गरज कि वह मेरे पास बैठे। चाहे कोई लुट जाय—चाहे कोई मार डाले, शुबरातन की बला से! उसकी जूती से! और फिर जब खुद[1] तुम्हें कुछ परवाह नहीं तो दूसरे को क्या गरज, जो अपनी नींद हराम करे, अपना घर छोड़े। और फिर तुम किसको सोने के टके देते हो कि वह इतनी परवाह करे।

दफ्तर से आठ-नव बजे रात वापस हों तो फिर घर का काम-काज कैसे चले। और फिर हालत आपकी यह है कि आपके दफ्तर में चौकीदारों तक की तनख्वाहों में इजाफा[2] हो गया, मगर तुम आठ-नव बजे तक दफ्तर में मरते रहते हो, फिर भी वैसे के वैसे दिखाई देते हो। तुम्हें मालूम है कि घर में अकेले रहती हूँ, मगर फिर भी कुछ नहीं समझते। बस, यह जानते हो और अपने दिल में कहते होगे कि घर में एक जानवर पाल लिया है, उसे जिस तरह चाहें, रखें; दिन भर घर का काम लें और रात भर अँधेरे-घुप में पड़ी रहे, घर की रखवाली करे।

अब खाना वगैरह कैसे निकालूँ? अँधेरे में कुछ सुझाई देता है? बरतन अलग जूठे पड़े हैं! कड़वे तेल का दिया खुद अपना मुँह देख रहा है। और कहोगे कि खाना ठंडा

---

१ स्वयं। २ बढ़ती।

हो गया। जब तुम इतनी रात को घर आओगे तो खाना ठंडा नहीं क्या गर्म रहेगा ? सारी चीज मिट्टी हो गई है। है—है ! यह बिरयानी[१] तो बिलकुल ही पाला हो गई ! अब बताओ, इस में क्या मजा मिलेगा ? मगर मेरे बकने से क्या होगा। मैं हजार चाहूँ कि तुम्हें मजेदार खाना मिले, तो मेरे चाहने से क्या होता है ? तुम भला दफ्तर से आठ बजे से पहले क्यों आने लगे ! और आज आठ बजे आये हो, कल दस बजे आओगे। जैसे आठ बजे वैसे दस बजे। आज तो खैर ठंडा खाना भी मिल गया, कल जब दस बजे आओगे तो यह ठंडा खाना भी न मिलेगा। भला चूहे-बिल्लियाँ उसे क्यों छोड़ने लगीं। दस बजे रात तक कौन ताकता रहेगा ? आदमी हूँ, आँख लग जाना इतनी रात गये कोई ताज्जुब[२] की बात नहीं है।

यह क्या है ? अरे कमबख्त शुबरातन, खुदा तेरा बुरा करे, रास्ते ही में मैले कपड़ों की गठरी डाल दी ! यह कपड़े भी कम्बख्त एक हफ्ते से मैले बँधे पड़े हैं। तन के कपड़े भी चीकट हो गये हैं। तमाम बदन[३] से बू आती है। मगर तुम दफ्तर से आठ बजे से पहले क्यों आओगे जो किसी और धोबी की फिकर करो, और ये मैले कपड़े धुलने जायें। कमबख्त दरजी के यहाँ जो कपड़े सिलने गये, वह आज आते हैं न कल। उसकी दूकान पर दस चक्कर करो तो

---

१ एक तरह का पुलाव। २ आश्चर्य। ३ शरीर।

शायद जल्दी कपड़े दे। चार कमीजें, दो पाजामे दिये हुए आज जुमा-जुमा आठ, सनीचर नव, इतवार दस, पीर ग्यारह, मंगल बारह. बुध तेरह, जुमेरात चौदह। गजब खुदा का आज आधा महीना हो गया। मगर उसने करवट न ली। और न तुम्हें फुर्सत कि उसकी खबर लेते। भला दर्जी को क्या पड़ी है। वह कपड़े रखे-रखे वहीं हजम हो जायँगे। और ये मैले-कुचैले कपड़े बदन ही पर खतम हो जायँगे। जितने मैले कपड़े होंगे, उतनी ही उनकी जिन्दगी कम होती जायगी। क्या कहते हो कि घर में कपड़े और भी तो हैं? हाँ, हैं, मगर मैं कहती हूँ कि तुम्हें मालूम था कि मुझे कई रोज से जुकाम था, दर्द की शिद्दत[1] से सिर फटा जा रहा है, खाँसी अलग सता रही है। मगर कहूँ तो किस से कहूँ? तुम को क्या परवाह? जब दफ्तर से आठ बजे रात को आओगे तो भला मेरी दवा-दारू क्या खाक होगी! आज चार-पाँच रोज हो चुके हैं, रात एक पल को भी नींद नहीं आई, सीना[2] बिलकुल जकड़ा सा मालूम होता है, खाँसते-खाँसते दम घुटने लगता है, मुहल्लेवालों की नींद हराम हो जाती होगी; मगर तुम्हें क्या फिकर! एक दिन इसी तरह कुछ और का और हो जावेगा, तुम को खबर भी न होगी। निगोड़मारी दवा भी एक ही खूराक, तुम्हारी घड़ी से वक्त देख कर खा ली थी। फिर उस वक्त से अब

---

१ तेजी या अधिकता। २ छाती।

तक दवा नसीब न हुई। और नसीब भी क्या होती, घड़ी तो तुम्हारी कलाई की जीनत[1] बनी थी, मैं वक़्त किस तरह मालूम करती। बड़ा क्लाक[2] मुआ न जाने क्या-क्या बजाया करता है। कभी नव बजाता है, कभी बारह बजा देता है। सोचती थी कि जब तुम चार बजे दफ्तर से आओगे, दूसरी खूराक भी खा लूँगी। मगर तुम भला आठ बजे से पहले क्यों आने लगे? उसका वक़्त भी निकल गया। और दवा की शीशी भी हवा के झोंके से ताक से गिर कर चक-नाचूर हो गई। घर में देखो तो अँधेरा - घुप। जान ही सूख गई; क्योंकि सवेरे ही तो चूहों ने चिमनी गिरा कर चूर कर दी थी तुम से यह न हो सका कि जब इतनी देर में घर आये थे। तो एक चूहेदान ही खरीदते लाते। लालटेन की बत्ती भी रात को आफत के वक़्त जबाब दे चुकी थी। तुम दफ्तर से आठ बजे आये। अब भला चिमनी कौन खरीद कर लाता और कौन बत्ती ठीक करे? करीम अपा-हिज, शुबरातन से मतलब नहीं, तुम दफ्तर में। मैंने तो उम्र भर ऐसा काम कभी नहीं किया था। मैं क्या जानूँ, निगोड़ी बत्ती कैसे दुरुस्त की जाती है। मेरे बाप के यहाँ एक नहीं, दो नहीं, बीसियों मुलाजिम, मामाएँ और फिर उनके मकान के हर गोशे[3] में बिजली। जरा सा बटन दबाया और सारा घर जगमगा उठा। मैं भला मिट्टी के तेल और तेल-

---

१ शोभा। २ दीवाल की बड़ी घड़ी। ३ कोना।

बत्ती को क्या जानूँ ? मैं यह कब कहती हूँ कि तुम्हारे मकान में भी बिजली लग जाय। तुम तो छींकते नाक काटने दौड़ते हो ! बोलना भी आफत है ! अब लो अँधेरे-घुप में रात भर पड़े रहो, चाहे खुदा-न-ख्वास्ता[1] साँप डस जाय, चाहे बिच्छू काट जाय। अरे मैं कहती हूँ कि तुम अक्ल के दुश्मन क्यों हो ? अब बाजारों में क्या रखा होगा ? कहीं इतनी-इतनी देर तक दूकानें खुली रहती हैं ? कुछ पता भी है, इस वक्त रात के अब साढ़े ग्यारह बजनेवाले हैं ! अब सुबह से पहले कुछ नहीं हो सकता। मैं कहती हूँ कि नौकरी सभी करते हैं, दफ्तर भी लोग जाते हैं, अपना काम भी करते हैं, मगर तुम्हरी तरह नहीं। कुछ तुम्हारी अकल मारी गई है ? ये कपड़े रोज पहनने के नहीं हैं। अगर उन्हीं को पहन डालूँगी तो कल किसी शादी-ब्याह की तकरीब[2] में जाने के लिए क्या कपड़े भी किसी से भीख माँगूँगी ? और फिर या तो मुँह चुराऊँ और या कर्ज लेकर नये कपड़े बनवाऊँ ? यही चाहते हो न ? दो-चार जोड़े अगर बक्स में वक्त-बेवक्त के लिए पड़े रहेंगे तो हर्ज ही क्या होगा ? तुम्हारी ही इज्जत-आबरू के वक्त काम आवेंगे। मेरा क्या बिगड़ता है, मैं तो ऐसे-ऐसे न जाने कितने जोड़े पहन चुकी हूँ।

उई तौबा या मेरे अल्ला ! तुम्हारी बातें तो मेरी समझ

---

१ ईश्वर न करे। २ उत्सव।

में नहीं आतीं। भला मैं अकेली सारा घर किस तरह सँभालूँ ? दो नौकर एक अपाहिज, दूसरी फैशनेबुल[1]। न किसी काम की न धन्धे की। इधर तुम्हारे दोस्तों की लैनडोरी बँधी रहती है। एक आता है—एक जाता है। पुकार-पुकार कर नाक में दम कर देते हैं। अब तुम्हीं बताओ, उनके साथ कोई कहाँ तक चीके ? उन भले आदमियों को यह भी नहीं मालूम होता कि अगर कोई घर में होता तो बोलता ही। कहने के लिए ये जरा-जरा सी बातें हैं, मगर जिसे भुगतना पड़ता है, वही जानता है। तुम आठ बजे रात को दफ्तर से आये हो, आखिर कौन उनसे बातें करे ? कौन मेहमान नवाजी[2] करे ? चिल्ला चिल्लाकर चले जाते हैं। मैं औरत जात[3] ठहरी। एक वह सुबरातन है कि कच्चा-पक्का खाना पका कर गायब हो जाती है। करीम बिलकुल निकम्मा है। तुम्हारे पास रुपया फालतू है। तुम उसे तनख्वाह क्या पेन्शन दे रहे हो, देते जाओ। मेरा वश चले तो मैं एक मिनट में उसे निकाल बाहर करूँ। मगर क्या करूँ ? जब यह देखती हूँ कि तुम आठ-आठ बजे रात को आते हो तो इसी को गनीमत[4] समझती हूँ। क्या करूँ, इस आफत में यही एक आड़ सही।

---

१ बनावसिंगार से रहनेवाली। २ अतिथिसत्कार। ३ स्त्रीजाति। ४ संतोष की बात।

तुमको क्यों इस बात की खबर होगी कि नजीर भाई के लड़के का कल शाम को मूँडन है। पन्द्रह दिन कब्ल[1] से दावत-नामा[2] आ चुका है, मगर किससे बताती और क्या बताती ? तुम्हें दफ्तर से आठ बजे से कब्ल फुर्सत नहीं मिलती। तुम दफ्तर से आठ बजे रात को आये हो, जब सारी दुनिया के सोने का वक्त होता है, आँखों में नींद होती है। फिर बातचीत करने की किसे याद रहती है ? भला बताओ तो, उनके यहाँ जाना जरूरी है कि नहीं। मगर तुम्हारा तो यह हाल है कि आठ बजे रात को घर पर आते हो। सलाह-मशवरा[3] करने का कोई वक्त नहीं होता। बस अब यही होगा कि तुम्हारे यहाँ भी कोई न आवेगा, टुटरूँ-टूँ अलग-थलग पड़े रहोगे, अपने पराये सब छूट जायँगे ; कोई कब तक ख्याल करेगा कि आप उनके अजीज[4] हैं। गैर नहीं तो और क्या हैं ? दफ्तर के चपरासी तक चार बजे अपने-अपने घर की राह लेते हैं और अपने बाल-बच्चों से मिल जाते हैं, और तुम हेड क्लर्क होकर रात के आठ बजे आते हो, जैसे दफ्तर की सारी जिम्मेदारी तुम्हारे ही ऊपर है।

सारा जाड़ा खतम हो गया, न मेथी की खिचड़ी किसी दिन पकी, और न गाजर का हलवा बन सका। जब खुद

---

१ पहले। २ निमन्त्रण पत्र। ३ मंत्रणा। ४ नातेदार।

तुम्हीं को परवाह नहीं, रात के आठ बजे दफ्तर से आओगे तो बाजार कौन जायगा ? नसीब की बात है। मैंने कहा था कि घर में घी बिलकुल नहीं है। तुम्हें क्या परवा ? अब बताओ, तरकारी किस चीज से पकाई जाय, दाल काहे से बघरे ? शकर भी खतम होगई। चाय कैसे बनेगी ? अगर ख्याल करते तो जल्दी आते। तुम यही समझते हो कि मैं अकेले सब अपने पेट में भर लेती हूँ। और मैं कहती हूँ कि ख्वाह मैं चीखते-चीखते मर जाऊँ, मगर कोई परवाह नहीं करता। डाक पर डाक चली आती है। मेज पर खतूत[1] का अंबार लगा हुआ है। मैं कहती हूँ, कौन जवाब दे ? जो मेरे जवाब देनेवाले थे, उनका जवाब मैंने दे दिया, मगर और खतूत के जवाबात[2] कौन दे ? जब तुम आठ बजे रात में दफ्तर से आओगे तो क्या डाकखानेवाले तुम्हारे नौकर हैं कि तुम्हारा इन्तजार[3] करते रहेंगे कि आपको कार्ड-लिफाफा खरीदने हैं या किसी को खरीदने के लिए भेज रहे हैं ? और डाकखाना भी क्या आपका दफ्तर है कि रात के आठ बजे तक खुला रहेगा ? न तुम दफ्तर से सही वक्त पर आओगे, न खतूत के जवाब दिये जा सकेंगे। अब बोलते क्यों नहीं ? क्या साँप सूँघ गया है ! वाह, यह अच्छा तरीका है ! मैं पागल की तरह बकती रहूँ और तुम पत्थर की तरह सब कुछ सुनते रहो, इस कान से सुनो और उस कान से उड़ा

---

१ चिट्ठियाँ। २ जवाब का बहुवचन। ३ प्रतीक्षा।

दा। तुम कहते होगे कि भोंकता होगा—कुत्ता। अच्छा चलो मैं भी अब न बोलूँगी। तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। जब चाहो, दफ्तर से आओ।

————

रेडियो के मुताल्लिक[1]

मैं कहती हूँ कि यह तुम को क्या हो गया है? जिस चीज के पीछे पड़ गये, पड़ गये। और जो कोई कुछ कहे तो नाक-भौं चढ़ाते हो, मुँह बनाते हो, और हर एक को जाहिल कहते हो। लेकिन कभी यह नहीं सोचते कि यह आखिर तुम क्या किया करते हो? जब से यह रेडियो लाये हो, सोना हराम कर दिया है। जब देखो, उसी को लिये बैठे रहते हो। न कोई काम है और न किसी की कुछ सुनते हो। एक तो मैं क्या-क्या चीखती रहती हूँ कि देखो, अभी रेडियो न लाओ, मगर तुमने एक न सुनी। सैकड़ों रुपया लगा दिया और एक रेडियो उठा लाये। मुझे देखो कि एक एक पैसे की किफायत[2] करती रहती हूँ और फूँक-फूँक कर कदम उठाती हूँ, और यह खयाल करती रहती हूँ कि कहीं कोई पैसा बेजा न खर्च हो जाय। भला इस तरह घर कैसे बन सकता है? मैं समझती हूँ कि रेडियो एक तुम्हारा

---

१ संबंध में। २ बचत ।

ही दिलचस्पी की चीज नहीं, घर के सभी लोग सुनेंगे और दिल बहलायेंगे। मगर मैं तो यह कहती हूँ कि अगर अभी यह रुपया न खर्च करते और यह रेडियो न लाते तो क्या हर्ज होता और कौन सी दिलचस्पी खत्म हो जाती ? रोज सनीमा जाते हो, थियेटर देखते हो, नाच-गाना सुनते हो, सैर-तफरीह[1] करते हो, और बीसियों तमाशे देखते हो, एक कम्बख्त दिलचस्पी रह गई थी, वह भी ले आये। मैं यह कब कहती हूँ कि यह कोई बुरी चीज है। मैं यह भी जानती हूँ कि घर बैठे हजारों किस्म के गाने ड्रामे,[2] और खुदा जाने क्या-क्या सुने जायँगे। मकसद[3] तो मेरे कहने का यह था कि यह फिलहाल[4] एक फिजूलखर्ची से ज्यादा नहीं है। तुमने बैठे-बिठाये एक मरतबा[5] में चार सौ रुपया खर्च कर दिया। और जहाँ यह रेडियो लगा रक्खा है, उस मकान की कोई खबर नहीं। अगर इतना रुपया मकान में लगा देते तो एक अच्छा-खासा कमरा बन जाता। यह कोई बुराई की बात थी ? और मुझे क्या करना है, तुम्हीं को सबसे ज्यादा तकलीफ होती है। जब कोई तुम्हारे दोस्त-अहबाब[6] आ जाते हैं तो बगलें झाँकते फिरते हो कि अब उन्हें कहाँ बिठाया जाय। फिर उस वक्त यह होता है कि मैं तो घर का सारा काम-काज बन्द करके बन्द हो जाती हूँ और तुम्हारे

---

१ मनोरंजन। २ नाटक। ३ मंशा। ४ इस समय। ५ बार। ६ इष्टमित्र।

दोस्तों के लिए जगह बनानी पड़ती है। मगर यह रोज-रोज कैसे बनेगा, और ऐसे कैसे काम चलेगा ? तुम ही जानो कि जब घर में दो-चार औरतें आ जाती हैं तो तुम्ही को कितनी तकलीफ होती है ? चारों तरफ इधर-उधर मारे-मारे फिरते हो। खुदा रक्खे, खर्च होता है तो यों होता है कि चार सौ रुपया यकजा[1] खर्च कर दिया और रेडियो सेट उठा लाये। कितनी शर्म उस वक्त मालूम होती है कि घर में एक कमरा भी तो ऐसा नहीं है कि किसी को बिठाया जा सके। घर में जितनी कुर्सियाँ हैं, वह इधर-उधर मारी-मारी फिरती हैं। कोई बावरचा खाने में पड़ी है—कोई सन्डास के पास पड़ी है। कोई कहाँ रक्खे। कोई अलग कमरा होता तो उसे भी जरा रक्खा जाता। मगर तुम सुनते कहाँ हो। किससे कहूँ ? मेरा तो जी घबरा गया। रोज-रोज एक-एक बात को कोई कहाँ तक तुम्हारे दिल में उतारता रहे। घर का काम तो इसी तरह चलता है कि कोई बात मैं सोचूँ, कोई बात तुम सोचो। तुम तो सोचने से पहले खर्च करने पर तैयार हो जाते हो और खर्च भी बेकार। मैं कहती हूँ कि अगर यह रेडियो सेट अभी न लाते तो कौन-सा हर्ज हो जाता, और वह कौन सी ऐसी दिलचस्पी होगी कि जो छूट जाती ? और अगर घर में एक कमरा बनाते तो शायद दो सौ रुपये से ज्यादा न लगते और उठने-बैठने का करीना हो जाता।

---

१ इकट्ठा।

कोई आ जाता तो उसे बिठा सकते, जैसे चार शरीफ इन्सानों का काम होता है। अब जाओ, वह देखो, कोई पुकार रहा है। वही कोई तुम्हारे दोस्तों में से होगा। चलिये, वह भी घंटे भर से पहले यहाँ से जायँगे नहीं, और दो घंटे तक घर का सारा काम-धाम बंद रहेगा। इसी से तो मैं चीखती थी कि अब वक्त आ गया है. दो चार सौ रुपया मकान में लगा दिया जाय और एक कमरा करीने का बना लिया जाय। मगर तुम्हें कोई फिक्र ही नहीं, एक अकेले मेरे चीखने से क्या होता है। यही देखो कि जब से रेडियो घर में आया है, हर वक्त घर में बैठे पी-पी लगाये रहते हो। दिन है तो रेडियो बजा रहे हो, रात है तो रेडियो बजा रहे हो। सारी दुनिया सो रही है और तुम हो कि सुई घुमा रहे हो। और फिर चीख-पुकार, न कोई बजाये बजे, न तुम्हें ठीक से बजाना आवे। बेकार अपना वक्त खराब करते हो, और दूसरे लोगों को भी परेशान करते हो। अब यही देखो कि मैं घंटों से देख रही हूँ कि सारे जमाने में रेडियो बंद हो गये होंगे, मगर तुम हो कि बैठे हुए मश्क[1] कर रहे हो। एक छोटे से बच्चे का तरह कोई तुम्हें कहाँ तक समझावे। मैं कहती हूँ कि यह वक्त सोने का है। खुद भी सो रहो, दूसरों को भी सोने दो। सुबह होगी तो देखा जायगा। मगर तुम्हें न जाने क्या हो गया है और न जाने उसके

---

१ अभ्यास।

अंदर क्या रक्खा है। मुझे मालूम है कि लखनऊ में एक रेडियो स्टेशन है। मगर फिर मैं क्या करूँ ? मैंने तो एक-आध मरतबा[1] हमसाई[2] के रेडियो पर लखनऊ को सुना है। मुझे तो बिलकुल पसन्द नहीं आया। तुम अपना शौक पूरा करते रहो। और जो जी में आता है, कर गुजरते हो। न यह देखते हो कि क्या फायदा या नुक्सान होगा, और न यह देखते हो कि घर की और कितनी जरूरतें पड़ी हुई हैं। गजब खुदा का। मुट्ठी भर रुपया रेडियो में लगा दिया। आज तुम बैठे बजा रहे हो, कल का ये लड़के इसी तरह बजावेंगे। और दो चार रोज में चार सौ रुपयों पर पानी पड़ जायगा। उन्हें कौन रोक सकेगा या कौन किसी को हर रोज ताकता रहेगा। चलो फिर दस-बीस रुपये उसकी मरम्मत में लगाना पड़ेगा। जब खेल-तमाशे की तरह तुम्हीं ने उसको बना लिया है तो ये बच्चे हैं। इनको इतनी समझ कहाँ से आई। वे तो यह देखते हैं कि यह बजाया जाता है और समझते हैं कि यह तो एक बाजा है, चलो भई, इसको बजाओ। मैं तो कभी भी न रोकूँगी। और मैं क्यों उनके दिल को तोड़ने लगी। जब तुम अच्छे-खासे आदमी होकर न समझे और उठाकर चार सौ रुपया रेडियो खरीदने में फूँक दिया, तो भला मैं कहाँ तक सोचती रहूँगी। उफ, आदमी ऐसा भी बे-कहे का होता है, जिसके दिल में इतनी

---

१ वार। २ परोसिन।

बात भी नहीं समाता—आदमी अपने अच्छे-बुरे को देखता है। जो तुम्हारी समझ ही में अच्छाई-बुराई नहीं आती तो फिर किसी दूसरे को क्या कहा जाय। मैं सोच रही थी कि अब के जाड़े में मुन्नू मियाँ का अकीका[1] करूँगी—यह करूँगी वह करूँगी। अब क्या खाक करूँगी! चार सौ रुपये तो आप ने अपने रेडियो में लगा दिये। कुछ न हो तो भी दो या तीन सौ रुपये तो जरूर ही खर्च होंगे। मकान की फिक्र अलग थी कि बन जाय। वला से ये चार सौ रुपये मकान ही में लग जाते तो चैन पड़ जाता, लेकिन तुम ने तो थोड़ी सी दिलचस्पी के लिए सारा काम बिगाड़ दिया। पूरा जाड़ा खतम हो गया और मैं अपने लिए एक कोट न बनवा सकी, क्योंकि महेज[2] कपड़े के खरीदने में पचास रुपये सर्फ[3] होते थे और पचीस-तीस रुपये उसका सिलाई में सर्फ होते। यह सोच कर इस वक्त डेढ़ सौ रुपये एक बारगी खर्च करना मुनासिब[4] नहीं है, अपना मन मार कर रह गई। मगर तुम हो कि चार चार सौ रुपये एकबारगी उठा कर खर्च कर देते हो, न आगा-पीछा सोचते हो—न बुराई-भलाई पहचानते हो। एक मैं अकेली क्या कर सकती हूँ। घर एक आदमी के बनाने से नहीं बना करता और न दुनिया में इस तरह घर बना करता है कि एक तो निज खपा-खपा कर पैसा बचाकर रक्खे और दूसरा चार-

१ मुन्डन। २ केवल। ३ खर्च। ४ उचित।

चार सौ खर्च कर दे। गजब खुदा का—हर चीज के लिए अपना मन मारती रहती हूँ और यह चाहती हूँ कि ऐसा काम न करूँ, कि जिसमें सौ-पचास फिजूल खर्च हो जायँ। मगर एक मेरे बचाने से क्या होता है। मैं एक पैसा बचाऊँगी और तुम दस पैसे की जगह दस रुपये खर्च करोगे। तौबा तौबा! मेरी तो जान अजाब[1] में पड़ गई है। मैं ही जानती हूँ कि किस मुसीबत से घर का खर्च चलाती हूँ और कैसे पूरा करती हूँ। माशा अल्ला[2] से दो बच्चे दिन में दो चार आने जरूर खर्च करते हैं। उनको ता कोई रोक भी नहीं सकता। और फिर यह कि मुहल्ले में कोई चीज बिकने आ जाय, चार लड़के खरीदने लगें, तो ये लड़के क्या मुँह देखा करें? और मैं यह भी करती, मगर जब यह देखती हूँ कि खुद तुमको ख्याल नहीं है, जो कुछ कमा कर लाते हो, चाहते हो कि उसको एक ही मरतबा में खर्च करके उड़ा दो, तो मैं इन बच्चों का दिल क्यों मारूँ? अब क्या दो चार पैसे के लिए ये बच्चे दूसरों का मुँह ताकते रहें। नौज,[3] मैं ऐसा क्यों करूँ? उन पर इतनी पाबन्दी क्यों लगाऊँ कि चार पैसे भी रोजाना न खर्च करें। मैं भला इतनी संगदिली[4] कहाँ से पैदा कर सकती हूँ। हाँ, यह तो तुम कर सकते हो कि चार सौ रुपये का आज रेडियो खरीद लाये, कल हारमोनियम लाये, ग्रामोफोन लाये, रोजाना इसी तरह

---

१ संकट। २ भगवान् रक्खे। ३ भगवान् न करें। ४ कठोरता।

सैकड़ों रुपया खर्च करते रहो, और ये बच्चे चार पैसे के लिए मुँह देखते रहें! जब इतने बड़े होकर तुम अपना हाथ नहीं रोक सकते, तब नासमझ भला कैसे अपना हाथ रोक सकते हैं? और न मैं ही यह कर सकती हूँ। हाँ, मैं जानती हूँ कि यह सब कुछ तुम्हारा ही पैदा किया है। तुम्हें इसका पूरा हक है। तुम चार सौ रुपये खर्च करते हो। अच्छा देखो, कल से मैं भी इसी तरह अलल्ले-तलल्ले[1] किया करूँगी। जो जी में आवेगा खरीद लिया करूँगी। सच कहती हूँ, इस की जरा भी परवाह न करूँगी कि यह फिजूल-खर्ची[2] है या क्या। आखिर मैं भी तो दिल रखती हूँ, मेरा भी तो जी चाहता है कि रोज एक नई साड़ी पहनूँ और हर रंग की साड़ी के साथ उसके मेल का जम्पर हो और उसके मेल का जूता हो, वैसा ही रूमाल हो, उसी किस्म के कपड़ों पर सजनेवाले जेवर हों। कभी सोचा होता कि अपने ही लिए खर्च करना जानते हो या और किसी का भी तुम को ख्याल रहता है। अच्छा चलो, बहुत अच्छा किया कि अपने शौक की चीज रेडियो खरीद लाये। तुम्हें वह हमारे बुंदे याद हैं और निकलिस[3], जिसको शायद अब चार महीने होने चाहते हैं, इस लिए पड़ा हुआ है कि उस में दो तोले सोना और मिला दिया जाय तो जरा और वजनी हो जाय और उसकी जंजीर मालूम होने लगे। बुंदे महेज इसलिए पड़े

---

१ अनापशनाप खर्च। २ व्यर्थ का खर्च। ३ गले का गहना।

हैं कि कोई वहाँ तकाजा[1] नहीं सका। यही तो कहती हूँ और इसी से तो मेरे तन-बदन में आग लग जाती है। कहीं जो कुछ सोचती हूँ, वह तो होता नहीं, लेकिन तुम कर गुजरते हो, जिससे फायदा तो कोई होता नहीं, हाँ, नुक्सान और खर्च जरूर होता है। यह जो मैं कहती हूँ, उससे घर भर की इज्जत बनती है। और घर में एक चीज पड़ी रहने से कभी न कभी काम आ ही जाती है। यह जो रेडियो लाये हो तो उससे क्या फायदा होगा? थोड़ी सी दिलचस्पी[2]। और जब यह खराब होगा तो सारी दिलचस्पी रक्खी रह जायेगी। और दस-बीस रुपये फिर लग जायँगे। और अगर खुदा-न-ख्वास्ता[3] कल कोई जरूरत पेश[4] आ जाय तो इस रेडियो से क्या काम चलेगा? जेवर तो फिर भी किसी न किसी दाम पर बिक सकता है; क्योंकि सोना-चाँदी कभी बेकार नहीं जाता। मगर तुम किसका सुनते हो। जो जी में आता है, वह करते हो। एक तुम बड़े अकलमन्द हो और सारी दुनिया बदअकल[5], बदशऊर। जरा अपने पास-पड़ोसवालों को देखा होता। यह क्या करीब ही जज साहब रहते हैं। कितनी बरसें हो गईं, अच्छी तनख्वाह, अच्छी आमदनी, नौकर-चाकर, घर में मोटर, एक अफसर आला। लेकिन आज तक उनके मकान में रेडियो नहीं है। तो क्या उनका कोई काम बंद हो गया? वह चाहते तो एक क्या दो रेडियो

---

१ तगादा। २ मनोरंजन। ३ ईश्वर न करे। ४ सामने। ५ मूर्ख।

सेट लगा लेते; लेकिन आदमी अपना आगा-पीछा सोचकर काम करता है। क्या वह भी आप ही की तरह फिजूल खर्च करते फिरते हैं? एक बस तुम्हीं ऐसे थे कि बगैर रेडियो के गुजर नहीं होता था। इस मोहल्ले में बीसियों महाजन और दूसरे बड़े कारोबारी रहते हैं। किसी एक के भी यहाँ रेडियो नहीं। और क्यों हो? वे जानते हैं कि उनके पास जो रुपया है, उसको बेजा खर्च में क्यों लगावें। किसी काम में लगाते हैं, उससे दस-बीस और कमा लेते हैं। एक तुम्हारे पास रुपया फालतू था, तुमने लगा दिया। मैं कहती हूँ कि किसी का मशवरा[1] लेते, दर्याफ्त कर लेते। अपने बड़े-बूढ़ों से बात नहीं करते, न उनको अपनी जूती के बराबर समझते हो। फिर क्यों तुमको कोई मशवरा देने आवे। और क्या किसी को कुत्ते ने काटा है कि वह आपके साथ मगजपच्ची करे। तुम कमाते हो, खर्च करते हो; खूब खर्च करो। और अब जो कुछ बैंक में पड़ा हो, वह निकाल लाओ और कोई दूसरी चीज खरीद लाओ, या किसी और कारखाने का बना हुआ इससे अच्छा कोई रेडियो सेट खरीद लाओ। एक से दो हो जायँगे तो और ज्यादा दिलचस्पी होगी। एक ही वक्त में कई स्टेशनों से लुत्फ उठाओगे। क्यों, इसमें कोई पागलपन की बात क्यों है? दुनिया देखेगी कि हाँ साहब, देखो तो, मोहल्ले में कोई

---

१ सलाह।

इतना दिलवाला नहीं था कि जो अपने मकान में एक रेडियो सेट लगा देता। लोग कहेंगे कि आदमी गरीब हो, मगर दिलवाला हो। चलो बस, थोड़ी देर के लिए खुश हो लेना। लोग मालूम नहीं क्या-क्या समझने लगेंगे। खुदा की मार ऐसी बेहयाई और फिजूलखर्ची पर! समझते हो कि बड़ा भारी कारनामा कर डाला। और अब इस मोहल्ले भर में लोग आपके पाँव धो-धोकर पियेंगे; क्योंकि कभी किसी ने रेडियो तो देखा नहीं है, एक तुम्हीं नई चीज लाये हो! अच्छा बस, खुदा के लिए माफ करो। अब बन्द करो, कल फिर बजा लेना। मेरे सिर पर चूँ चूँ लगाकर रात भर नींद हराम कर दी! गजब खुदा का, बारह बजने चाहते हैं और आप रेडियो पर बैठे हैं। खराब हो गया तो मैं क्या करूँ? मैं तो जानती ही थी, आज नहीं तो कल खराब हो जाता। तुम्हारी तरह कोई रेडियो नहीं बजाया करता। न किसी काम से मतलब, न सौदा-सुलफ से गरज, न यह मालूम करने से मतलब कि घर में क्या हो रहा है, क्या जरूरत है। बस, अब एक रेडियो मिल गया है। सदके कुर्बान[1]! अच्छा हुआ, खराब हो गया। अब जो तुम यों ही परेशान करोगे तो मैं कम्बखत रेडियो को सुबह ही उठा कर फेंक दूँगी।

———

१ बलिहारी।

पान खाने पर

उई, इस डिबिया में तो एक पान भी नहीं रहा! मैंने गिन्ती के पचास पान बनाकर रखे थे। गजब खुदा का, दिन भर में सब चबा डाले! ऐं, मैं कहती हूँ कि कोई इस तरह भी पान खाता है कि एक-एक ढोली पानों की गिलौरियाँ चाबकर रख दे। पान न हुए, निगोड़े लड्डू-पेड़े हो गये। और फिर लड्डू-पेड़े भी तो इस तरह कोई न खाता होगा, जैसा कि तुम आजकल पानों के खाने पर उतर आये हो। बकरियाँ भी इस तरह शायद घास-पात न खाती हों। दिन भर बैठे जुगाली कर रहे हैं। मैं पूछती हूँ कि आखिर दुनिया में किसी चीज के इस्तेमाल का कोई उसूल[1] और कोई तरीका[2] होता होगा? मगर तुम हो कि तुम्हारा कोई उसूल और तरीका ही समझ में नहीं आता। तुम अपने नजदीक समझते होगे कि मैं बड़ा अच्छा काम करता हूँ। तौबह, नौज, ऐसा कोई इन्सान हो! सौ गिलौरियाँ बनाकर दे दो

---

१ नियम। २ ढंग।

तो डिबिया खाली, पचास दे दो तो खाली। पूरा पानदान सामने उठाकर रख दो तो खाली। कोई तुक ही नहीं है। फिर तुम्हारे यार-दोस्तों के मारे और भी नाक में दम है। एक-एक मर्तबा में चार-चार गिलौरियाँ मुँह में ठूँस लेते हैं, और आप उनके सामने डिबिया खोलकर रख देते हैं। बस, फ़ुर्सत हुई। फिर भला काहे को दफ्तर से पान बच कर आने लगे। अरे चलो, यह कोई एक-दो दिन की बात थोड़े ही है, यह तो मैं रोज देखती रहती हूँ....गज़ब खुदा का! एक टुकड़ा पान मुझको खाना खाने के बाद भी नसीब नहीं होता। सबके सब पान तुम्हारी डिबिया में बनाकर ठूँस देती हूँ, इसलिए कि हर वक्त मुझे पान न बनाना पड़े। और फिर एक टुकड़ा भी आये-गये के लिए नहीं बचता.... और फिर अल्ला का सँवार[1] पानों पर, बाबा के मोल तो मिलते है। मुई शुबरातन यही कहती हुई आती है कि बाबा बारह आने से कम नहीं करता। करीम भी यही कहता रहता है कि बीबी, अब बाजार में पान बहुत गराँ[2] हो गये हैं। एक रुपया ढोली तक बिकने लगे हैं। कोई कितना ही कहे-सुने, वह एक कौड़ी भी कम नहीं करते, और तुम हो, पूरी एक ढोली पानों की दिन भर में चबाकर रख देते हो, और फिर इस पर बस नहीं, कहते हो कि वहाँ भी बाजार से गिलौरियाँ मँगाना पड़ता है। और खाता कौन है? वही

---

१ मार। २ महँगे।

मिलने-जुलनेवाले। जब जी चाहा, आपके पास आ बैठे और गिलौरियाँ चबाने लगे, जैसे घर से खाना नहीं खाकर आये। यहाँ यह हाल है कि कभी मतली-वतली[1] होने लगे तो कभी पान खा लिया। दिन में एक और शाम को एक गिलौरी, यह मेरा दस्तूर[2] है। ज्यादा खाती हूँ तो मुझसे कसम ले लो। और कोई मेरी सगी-सौतेली मा नहीं आती कि उसकी खातिर-मदारात[3] के लिए गिलौरियाँ बना देती हूँ। हाँ, तुम खाते हो और तुम्हारे दोस्त-अहबाब[4] खाते हैं। मैं इतने पान खाती होती तो कयामत हो जाती। और तुम मुझको यों भी फूहड़ कहते हो। फिर अगर मैं इतने पान खाती तो कद्र व आफियत[5] मालूम होती...अल्लाह की पनाह, एक ढोली रोज पानों की गिलौरियाँ! कुछ खबर भी है कि महीने में कितना खर्च पानों का हुआ? तीस रुपये महेज पानों की कीमत तुम्हीं को अपनी गिरह से देना पड़ेगी; और कहाँ से आयेगी? क्या तनख्वाह का रुपया बढ़ता जावेगा?

ऐ लो देखते हो, यह अपना कोट कहाँ से लाल कर लाये हो? जरा देखो तो, पूरी आस्तीन गारत होकर रह गई है! कुछ समझ में आया? यह पानों का थूक है। और खाओ दो-दो ढोली! अभी क्या है, अभी तो यही खराब हुआ है, कल को सारे कपड़े गारत होंगे। बिछौने की चादर, तकिये

---

१ उबकाई। २ नियम। ३ सत्कार। ४ इष्टमित्र। ५ कुशल।
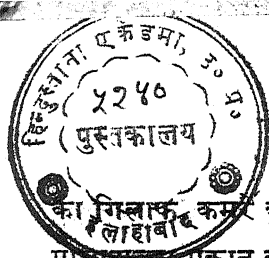
का गिलाफ़, कमरे का फ़र्श, सब लाल हो जायगा। एक तो मा[illegible] मकान ही बड़ा साफ़-सुथरा है—तुमने और भी बना दिया है—जगह-जगह थूक, बिलकुल घिनौना बना रखा है। अब क्या है, अब तो आपने पान खाना शुरू कर दिया है, रोज ही कपड़ों की ख्वारी[1] होगी। उजले-उजले बगले के पर जैसे कपड़े कैसे पानों के थूक से बर्बाद होंगे और अब उन्हें रोज धुलाओ तो कहीं जाकर पहनने के काबिल होंगे। महीने में तीस रुपये के पान खाओगे और दस-बीस रुपये कपड़ों की धुलाई पर सर्फ़[2] होंगे। आखिर मैं पूछती हूँ, यह भी कोई अक्ल की बात है? अगर मैं कहीं ऐसा करती तो भीतर से बाहर तक फूहड़ और न जाने क्या-क्या कही जाती।

अच्छा, भला मैं पूछती हूँ कि अगर खुदा-न-ख्वास्ता एक दिन पान न मिले तो तुम्हारी क्या हालत होगी? दफ्तर में अफीमियों की तरह हर वक्त पिनक में आँखें बंद किये पड़े रहोगे, या झूम-झूमकर गिर पड़ोगे? सरकारी काम भी चौपट होता रहेगा। लोग शिकायतें करेंगे। जब काम न करोगे तो क्या तनख्वाह मुफ्त मिल जायगी? काम ही के दाम होते हैं, वर्ना यों कौन किसी को दे देता है। और सुनो, रमजान[3] शरीफ का जमाना करीब आ रहा है। मैं पूछती

---

१ बर्बादी। २ खर्च। ३ वह पवित्र महीना जिसमें मुसलमान व्रत रखते हैं।

हूँ कि अगर यों ही दो-दो ढोली पानों को रोज चबाया करोगे तो रोजे[1] कैसे रखोगे ? दो ही दिन में बित्ती बोल जायगी। मजबूरन[2] रोजे छोड़ दोगे। जरा आईना लेकर अपने दाँत तो देखो, कैसे शरीफे के बीज हो रहे हैं। जबान देखो तो वह बिलकुल काली पड़ गई है। कोई इस तरह भी पान खाता है ? जरा डाक्टर से जाकर पूछो कि दाँतों की खराबी से क्या-क्या बीमारियाँ पैदा होती हैं। मैंने खुद अपनी आँखों से एक किताब में देखा था कि आदमी को अपने दाँतों की बड़ी हिफाजत[3] करनी चाहिए ; क्योंकि दाँतों की खराबी की वजह से मेदा कमजोर होता है और मेदे की खराबी से पूरी सेहत[4] पर असर पड़ता है। आपके दाँत तो बिलकुल ऐसे हो गये हैं कि अगर उनको खराद पर रखवाओ तो शायद उजले हो सकें, वर्ना यों ही तह पर तह जमती चली जायगी। और नतीजा यह होगा कि तुम भी दाएमुल[5]-मरीज होकर रह जाओगे और वक्त से पहले पेन-शन लेनी पड़ेगी। और वह निगोड़ी पेनशन ही क्या होगी। जिस शख्स[6] के खर्च का यह हाल हो कि महीने में तीस-तीस रुपये के पान खा जाय, वह पेनशन लेकर कैसे बसर[7] कर सकता है ? पेनशन भी पूरी तनख्वाह की आधी मिलेगी। आज तो १२५ रुपये में गुजर नहीं होता, और जब

---

१ व्रत। २ विवश होकर। ३ रक्षा। ४ स्वास्थ्य। ५ बारहमासी रोगी। ६ व्यक्ति। ७ निर्वाह।

कुल जमा बासठ रुपये कुछ आने पाई मिलेंगे तो क्या होगा ?

अल्लाह जानता है कि मुझे तो यह कोफ्त[1] हर वक्त खाये जाता है। घुलाये डालता है। नौज कोई ऐसा इन्सान हो। मेरी तो तकदीर ही फूट गई ! मैं क्या जानती थी कि ऐसे आदमी से पाला पड़ेगा, जो दिन में पचास-पचास सौ-सौ गिलौरियाँ पानों की चबा जायगा।

तुम्हें क्या मालूम कि इज्जत-आबरू किसे कहते हैं। आदमी के घर में ऐसी चीजें हर वक्त पड़ी रक्खी जाती हैं। खुदा जाने कब जरूरत पड़ जाय। और फिर पान-तम्बाकू ऐसी थुकनी चीज, इसी से इज्जत बनती है और इसी से बिगड़ती है। अब यही देखो कि दोपहर में तो काजी साहब की बीवी घूमने चली आईं। वह तो खुदा का करना ऐसा हुआ कि उन्हें भी जल्दी थी और कुछ अबर[2] भी था। बेचारी उलटे पाँव वापस चली गईं। अगर कहीं दो-एक घंटे के लिए रुक जातीं तो कैसी नाक कटी थी और वह भी अपने दिल में क्या कहतीं कि "नाम बड़ा दर्शन थोड़ा", न पान न पत्ता ! मैं पानदान देखती हूँ तो जी सन से हो गया ! पान नदारद थे। मुझे क्या खबर थी कि तुम सबके सब पान अपनी डिबिया में ले गये और फिर दफ्तर से भी मँगवा भेजे ! आदमी मुँह से कम से कम बता

---

[1] कुढ़न। [2] बादल।

तो देता है। न जाने कैसा वक्त पड़ जाता है। इन बेचारी को क्या खबर होती कि मियाँ दिन में दो-दो ढोली पानों की चबा जाते हैं और उन्हें क्या मालूम होता कि इस घर में एक-एक रुपये के रोज पान आते हैं। अच्छा मैंने माना, तुमने सब पान नहीं खाये। तो तुमको क्या ऐसी जरूरत पड़ी रहती है कि सबको पान खिलाते रहो। और फिर घर तक पीछा नहीं छोड़ते। खैर भई, दफ्तर में सबके सामने खाते बुरा मालूम होता है कि किसी को बगैर दिये खा लो। मगर तुम्हारी तो यह फैयाजी[1] घर पर भी रहती है। उफ, मैं तो पागल हुई जाती हूँ। यहाँ पान बनाते-बनाते तमाम उँगलियाँ सियाह[2] हो गई हैं, मगर तुम्हारा पेट ही नहीं भरता। आखिर यह भी कोई करीना[3] है? दिन में दस-पाँच गिलौरियाँ काफी होती हैं। चलो छुट्टी हुई। अब यह नहीं कि एक उगला, एक थूका, और एक मुँह में भर लिया। बोलो ना, अब मुझे कायल कर लो या तुम खुद कायल हो जाओ। इन्सान हर बात, हर काम एक उसूल से करता है। नौज, खुदा न करे कि मैं तुम्हारी तरह पान खाने लगूँ। मैं कोई बकरी हूँ जो हर वक्त पत्तियाँ चबाया करूँ। बस, दो वक्त खाना खाने के बाद बहुत है, वह भी मुँह साफ करने के लिए। और मैं तो इसी को छोड़ने वाली हूँ। जिसको अच्छा मालूम होता होगा, होता होगा। कौन ऐसी बड़ी खूबी पान

---

१ उदारता। २ काली। ३ कायदा।

खाने में है ? जरा सा मुँह खुल जाये सारी पीक कपड़े पर, बातें कीजिए और थूक दूसरों के मुँह पर उड़-उड़कर पड़ता जाता है। जहाँ बैठ गये, पिच-पिच थूकने लगे, और पूरी जमीन को सियाह करके रख दिया। फिर सारी बात की एक बात तो यह है कि रुपये-पैसे की कैसी बर्बादी होती है। तुम लाखों पान खाओ, पर दिया जलाते ही लिल्लाह[1] खुदा के लिए पानदान कमबख्त-मारे को यहाँ से उठा ले जाओ और अपने कमरे में रख लो। वहीं जो चाहो करो। मुझ से यह नहीं हो सकता कि मैं हर वक्त बैठी पान लगाती रहूँ और दुनिया के सारे काम तज दूँ। तुम्हारा जो जी चाहे, करो।

———

१ भगवान् के लिए।

एलेक्शन[1] हारने पर

मैं तो कहती थी कि तुम एलेक्शन हार जाओगे, मगर तुम किसका कहा सुनते हो; जो जी में आता है, वह करते हो। तुम्हें कौन समझावे और कौन कहे कि एलेक्शन तुम्हारे बस की चीज नहीं थी। आखिर वही हुआ। मैं जानती थी कि यह एलेक्शन, जिसमें लोग एक दूसरे की सात पुश्तों[2] को गिनवाते हैं, बड़ी बुरी चीज होती है। जिसके पास कोई गम न हो वह एलेक्शन में लड़ने के लिये खड़ा हो। और फिर सच्ची बात तो यह है कि आदमी के पास इतना पैसा होना चाहिए कि अगर जरूरत पड़े तो खर्च कर सके। आप के पास क्या था—जो कुछ था, वह सारी उम्र की कमाई थी, उसे भी आपने फूँक दिया। चलो अच्छा हुआ कि मुआ यह हंगामा[3] किसी न किसी तरह खत्म तो हुआ। गजब खुदा का, एक मुद्दत से सुन रही थी कि एलेक्शन होनेवाले हैं। जब से यह तमाशा शुरू हुआ, उसी

---

१ चुनाव या निर्वाचन। २ पीढ़ियों। ३ उपद्रव शोरगुल।

वक्त से आप एलेक्शन के पीछे दीवाने फिरते थे, न कोई और काम न गरज, न घर की परवाह बच्चों की फिक्र—न उनकी तालीम[1] की फिक्र—न घर की हालत का आपको कोई अन्दाजा। ऐसा मालूम होता था कि बस अब एलेक्शन ही से दुनिया और आखरत[2] बनेगी। कहिये, देख लिया ना तमाशा। जिन दोस्तों से आपको उम्मीद थी और बड़ी उम्मीद थी, उन्होंने कैसा वक्त पर धोखा दिया! तौबा-तौबा नोज इन्सान की अक्ल इस तरह खराब हो कि वह किसी की अच्छी माने न बुरी माने। और जो कुछ कहो तो कहते हैं कि कौमी काम है। चूल्हे में गया ऐसा कौमी काम, जिसमें आदमी घर फूँक कर तमाशा देखे! उकफोह, जैसे आदमी को बुखार आता है तो वह उसमें बड़बड़ाता है और जो जी चाहता है बकता चला जाता है, वही हाल आपके एलेक्शन का भी था। जबसे ये हंगामे शुरू हुए, एक मिनट के लिए भी चैन न पाया। खाना-पीना घर भर का हराम कर दिया। और रुपया-पैसा तो आप ने कौड़ियाँ और सिटकियाँ बना दिया। मगर फिर भी तकदीर में हार लिखी थी। मैं पूछती हूँ कि आखिर क्या ऐसी जरूरत पड़ी थी, जो आप ने एलेक्शन में हिस्सा लिया? क्या कौम में एक आप ही ऐसे कौम के नाखुदा[3] थे, जिसके बगैर यह किश्ती[4] पार नहीं हो सकती थी? या कौम का सारा दर्द आप ही के दिल में है? मैं तो

---

१ शिक्षा। २ परलोक। ३ कर्णधार। ४ नाव।

कहती हूँ कि खुदा का बड़ा शुक्र[1] है कि एलेक्शन खत्म हो गया। मुझे तुम्हारे हारने का कोई गम नहीं। मुझे तो खुशी इसकी है कि अब आइन्दा से तुम्हारे सिर पर यह भूत न सवार होगा। और अब कैसे सवार होगा? जो कुछ घर में पूँजी थी, वह आपने कौम के नजर कर दी। अब कौम के नाम पर फाके कीजिये। और मुँह बिसारे पड़े रहिये। उफ्फोह, जिस रोज से यह हंगामा शुरू हुआ, मेरे सिर पर तो रोज कयामत[2] आती थी और चली जाती थी। सुबह है तो, शाम है तो, दिन है तो, दोपहर है तो, गरजे[3] कि सारा दिन और सारी रात उसी झगड़े में गुजर गई और लेना एक न देना दो! मैं जानती थी कि आप जीत न सकेंगे। जिसके साथ तुम मुकाबला कर रहे थे, भला उसका और आपका क्या मुकाबला? उनके साथ एक नहीं, दो नहीं, बल्कि हजारों आदमी काम करनेवाले और लाखों रुपया उनके पास। मोटर-गाड़ी, घोड़ा-गाड़ी, पालकी, नालकी और तमाम न जाने क्या-क्या उनके यहाँ मौजूद, और यहाँ तुम्हारे पास क्या, बस ले-दे के एक बाइसिकिल, वह भी टूटी हुई! एक ताँगा भी नहीं। तो फिर भला ऐसा मुकाबला किस काम का? अब सारे शहर में हँसी हो रही है। कौन किसी का मुँह पकड़ सकता है? जो जिसके जी में आवेगा वह कहेगा। अब जाइये, सारे जमाने से लड़िये। एलेक्शन

---

१ धन्यवाद। २ प्रलय। ३ मतलब यह कि।

कोई हँसी-खेल नहीं है। हर चीज की इसमें भी जरूरत होती है। और फिर तुमको जानता ही कौन है ? तुम्हीं बताओ, तुमने कौम की क्या खिदमत[1] की है, जिसके भरोसे पर कौम के नुमाइंदे[2] बनना चाहते थे। कुछ आप ने किसी कौमी इदारा[3] को अपनी कमाई का कोई रुपया दिया होता जबानी खिदमत की होती, या यों ही मुँह से कह देना सिर्फ काफी है कि कौम की नुमाइन्दगी[4] करना चाहते हैं और बस सारे वोट आपकी मुट्ठी में। भला इस बदअकली[5] का क्या इलाज किया जावे ? कितना मैंने समझाया, खुशामद की, अल्लाह का वास्ता[6] दिया कि देखो अपनी हैसियत देखो। पहले कौम की खिदमत कर लो तब इस मुहिम[7] में कदम उठाओ। मगर तुमने किसी की न मानी। पाँव में ठीक से जूता भी नहीं है, और चले एलेक्शन में उम्मीदवार बनने। पहले अपनी हैसियत बनाओ, जो काम कर रहे हो उसको बढ़ाओ, लोगों का खिदमत करो, लोगों को अपनाओ, जलसों में तकरीर[8] करो, किसी जमाअत[9] के मेंबर बनो, कुछ अपनी जेब से चन्दा दो, उस वक्त फिर तुम्हें यह भी हक हो सकता है कि कौम तुम्हें अपना नुमाइन्दा बनावे। आखिर मैं पूछती हूँ कि यह तुम्हें क्या खब्त[10] हो गया है और क्यों अपने पीछे पड़े हो ? न कमाई न धमाई और एलेक्शन में फाँद पड़े।

---

१ सेवा। २ प्रतिनिधि। ३ समाज। ४ प्रतिनिधित्व। ५ कुमति। ६ निहोरा। ७ युद्ध या संघर्ष। ८ भाषण। ९ संस्था। १० उन्माद।

कोई ऐसा भी करता है। जो कुछ पास था वह तो सब आप एलेक्शन में फूँक तापे। अब एक-एक पैसे के लिए मोहताज फिरते हो। अब देखती हूँ कि कौन पूछने आता है और कौन आपके बच्चों की जरूरतों को पूरा करता है। जब मुसीबत आती है तो इन्सान की अक्ल भी ठिकाने नहीं रहती। मुझे तो यह हश्र[1] पहले ही से मालूम था। अगर तुम्हें इस का इल्म[2] न था तो आदमी दूसरों की भी सुनता है। मगर तुम तो एलेक्शन के पीछे ऐसे दीवाने हो गये थे कि किसी की अच्छी-बुरी बात भी नहीं सुनना चाहते थे। फिर किसके सिर में इतनी कूवत[3] थी कि तुमको जबर्दस्ती समझाता-बुझाता। कहने को तो सारे मोहल्लेवालों ने कहा; मैंने एक मर्तबा दो मर्तबा नहीं, बल्कि बीसियों मर्तबा कहा—मियाँ, अपनी जान खलजान[4] में न डालो; एलेक्शन तुम्हारे बस की बात नहीं है; अच्छे-खासे बैठे-बिठाये सिर-दर्द मोल न लो। मगर तुम कहाँ सुनते हो! तुमने तो समझ लिया था कि जो लोग तुम्हें समझाते हैं, वे खुद तुम्हारी जगह लेना चाहते हैं, और हुकूमत की कुर्सी तुमसे छीन रहे हैं। अब तुम खुद सोचो और बताओ कि वही बात सामने आई कि नहीं? मैं बुरी थी सही, तुम्हारे बड़ों ने तो तुमको समझाया था कि मियाँ, एलेक्शन-बाजी के चक्कर में न पड़ो, वर्ना बैठे-बिठाये अपने ऊपर एक नई मुसीबत मोल लोगे; लेकिन आपने उनका भी

---

१ परिणाम। २ ज्ञान। ३ शक्ति। ४ संकट।

कहा न किया। अगर मैं तुम्हारी दुश्मन थी, पास-पड़ोस-वाले तुम्हारे एजाज[1] और एक्तेदार[2] देखना नहीं पसन्द करते थे, तो यह तुम्हारे चचा मियाँ तो तुम्हारे दुश्मन नहीं थे। यह तो तुम्हारे बुज़ुर्ग[3] थे। मगर तुमने उनकी भी न सुनी। घर की सारी पूँजी, एक-एक पैसा गिनके तुम्हारे हाथों दे दिया और तुमने एलेक्शन में लगा दिया। यही नहीं, एक मकान बाप-दादे की निशानी बाकी रह गया था, सो तुमने उसे भी महाजन के यहाँ गिरवी रख दिया। रुपया-पैसा कोई समन्दर तो नहीं है कि खर्च करते रहो और बढ़ता रहे। मैं तो कहती हूँ, कुएँ का पानी भी सूख जाता है। अब तुम खुद गौर करो और सोचो कि यह जितना पैसा तुमने खर्च किया, किस काम आया? अगर यही पैसा किसी नेक[4] काम में लगाते तो उसका अर्ज[5] खुदा से भी पाते। जिन्हें देते, वे तुम्हें दुआएँ देते। दुनिया में भी नाम होता और उकबा[6] में भी काम आता। अब यह बताओ कि एलेक्शन में जितना खर्च किया, वह किस काम आया? उससे कितना सवाब मिला और किसको उससे फायदा पहुँचा? बड़े कौम के हमदर्द थे तो उसी पैसे से इसी कौम के लिए कोई इमारत बना देते, कौम के बच्चों के लिए कोई स्कूल कायम कर देते। उम्र भर नाम रहता, लोग उठते-बैठते तुम्हें दुआएँ देते और

---

१ सम्मान-प्रतिष्ठा। २ प्रभाव। ३ गुरुजन। ४ अच्छे। ५ प्रति-फल। ६ परलोक।

याद करते रहते कि देखो भाई, उसने कितना बड़ा काम किया। गजब ख़ुदा का, बगैर सोचे-समझे पानी की तरह पैसे को वहा दिया और फिर भी किसी काम न आया। तुमने यह भी खयाल न किया कि आइन्दा[१] क्या होगा। फिर अपना रक्खा हुआ जो कुछ खर्च किया वह तो किया ही था, और कर्ज भी ले लिया। अब उसका सूद पर सूद मजीद[२] लगाया जायगा और मकान की मालियत पर उसका बार[३] रोजाना बढ़ता जायगा। नतीजा यह होगा कि अदालत में मुकदमा चलेगा, तुम्हारे खिलाफ डिग्री होगी, फिर कुर्की की जायेगी और इतना बड़ा आलीशान[४] मकान, जिसे अब अगर तुम हजारों रुपये लगाकर भी बनाना चाहो तो न बना सको, वह नीलाम पर चढ़ाया जायगा और वही महाजन औने-पौने खरीद लेगा। चलो इस तरह रहने का एक सहारा भी गया। किराये का मकान ले कर रहोगे, हर महीने चालीस-पचास रुपया किराया अदा करोगे। तुम्हारी माहवार[५] इतनी आमदनी भी नहीं है। मुशकिल से दो-चार सौ रुपया माहवार पैदा कर सकते हो। इसी में कर्ज अदा करो, बच्चों की तालीम का इन्तिजाम[६] करो, घर का खर्च चलाओ। जब अभी पूरा नहीं पड़ता तो उस वक्त कैसे पूरा होगा? मैं बदअकल सही, बेशऊर सही, लेकिन यह समझ तो मुझमें भी

---

१ भविष्य में। २ अधिकाधिक। ३ बोझ। ४ बड़ी शान का, भव्य। ५ मासिक। ६ प्रबन्ध।

है कि अपना अच्छा-बुरा समझ सकूँ। अगर मैं कहीं इतना रुपया दे देती या किसी काम में लगा देती तो मालूम नहीं, तुम क्या करते। भला इतना तो सोचते कि तुम्हारे चार बच्चे हैं, चारों माशा अल्ला स्कूल में तालीम पाते हैं और हर महीने सौ-पचास रुपया उन पर भी खर्च होता है। अब जब आमदनी कम होगी तो क्या होगा? घर में कोई पैसा बाकी नहीं रह गया। मेरे जिस्म[1] पर जो जेवरात[2] थे, वह भी तुमने एक एक करके बेच दिये। मैं उस वक्त भी चुप रही। हालाँकि यह जेवरात मेरे वालदैन[3] के दिये हुए थे, लेकिन मैंने उनके बेचने पर भी उफ न की। मगर तुमको कोई अफसोस न हुआ। तुम्हारे सिर पर तो एक भूत सवार था! तुम यह भी जानते हो कि इन्सान को बीमारी-दुखी भी लगी रहती है। खुदा-न-ख्वास्ता अगर घर में कोई बीमार पड़ जाय तो पाँच रुपये डाक्टर की फीस के लिए भी न निकलें। और खासी वगैरह तो हर वक्त ही रहती है। लड़कोंवाले घर में इन बातों को कहीं ढूँढ़ने नहीं जाना है। अब यही देखो कि पिछले साल मुन्नू मियाँ को क्या था, एक मामूली रेल का कोयला आँख में पड़ गया था, और उसने क्या शक्ल अख्तियार[4] कर ली। अल्लाह की पनाह! कितने मर्तबा डाक्टर साहब को बुलाया गया, मेडिकल कालिज ले जाया गया। महीनों की दौड़-धूप के बाद उनकी

१ शरीर। २ गहने। ३ मा-बाप। ४ ग्रहण कर ली।

आँख ठीक हुई और सौ-पचास रुपये नहीं-नहीं करके भी खर्च हो गये। अब तो घर में एक कानी कौड़ी भी नहीं रह गई कि चार पैसे का जोशाँदा[1] ही मँगा लोगे—डाक्टर का फीस देना और इलाज-मुआलेजा[2] करना तो दरकिनार। यह सच है कि पैसा-रुपया हाथ का मैल होता है, मगर यह भी तो देखो कि किस मुशकिल से पैसा आता है। तुम इतने दिनों से प्रैक्टिस[3] करते हो, तुम्हीं बताओ कि कितना कमाया। और अपनी टाई-कालर पर कितना खर्च करते हो? जब घर में एक पैसे का सहारा न होगा तो कोई कर्ज भी न देगा। और एक ही कर्ज अदा करना मुशकिल होता है, दूसरा कर्ज लेना और उसे अदा करना तो बड़ी बात है। मैं तो औरत-जात हूँ, जो कुछ कहो, सब सच है। मगर तुम तो खैर मर्द हो, समझदार हो, तुम्हें खुदा ने हमसे ज्यादा अक्ल और सलीका दिया है। मगर फिर भी ऐसी गलतियाँ करते हो। आखिर मैं पूछती हूँ, बताते क्यों नहीं कि यह एलेक्शन में कूदने की आपको क्या पड़ी थी? चूल्हे में जायें ऐसे दोस्त-अहबाब,[4] जिन्होंने तुमको इस जंजाल में फँसा दिया। और फिर उन्हीं मूँडी-काटों का दम भरते हो—जब मैं जानती कि वही दोस्त-अहबाब अपने पास से, अपनी जेब से, निकालकर तुम्हारी कुछ मदद कर देते। बस

---

१ जुखाम में पीने का काढ़ा। २ दवा-दारू। ३ वकालत का धंधा। ४ इष्ट-मित्र।

इतनी ही दोस्ती थी कि तुमको एलेक्शन में झोंक दिया और खुद बैठे तमाशा देखते रहे—चाय, बिसकुट, टोस्ट, और मिठाइयाँ भी तुम्हारे ही पैसे से उड़ाते रहे। उन बेगैरतों को शर्म भी नहीं आई, और अब फिर आकर मुँह दिखाते हैं, हँसते हैं और एलेक्शन की झेप मिटाते हैं।

———

सनीमा देखने पर

तुम कहते हो, मैं बड़ा गुस्सेवर हूँ। होगा तुम्हारा गुस्सा। मैं तुम्हारे गुस्से की कब परवाह करती हूँ। अगर तुमको गुस्सा है तो मुझको भी गुस्सा है। कहो तो अपना गुस्सा दिखाऊँ। दुनिया में तुम्हीं तो एक इन्सान हो और कोई दूसरा थोड़े ही है। जब देखो सनीमा, जब पूछो सनीमा! सनीमा न हुआ दाल-भात हो गया। मैं कहती हूँ कि आदमी क्या उम्र भर सनीमा ही देखकर गुजर करता है? यह तो घर बर्बाद करने की निशानी है। वही मसल है कि दूसरों को नसीहत और खुद को फजीहत। शाम हुई और दोस्तों के दरवाजे पर रसद[1] लग गई। सनीमा रवाना हो गये। भला हिसाब तो करो कि तुम कितना रुपया सनीमा देखने पर खर्च करते हो? अगर यही रुपया बैंक में रख दिया होता तो वक्त पर काम चलता। इसमें कुछ नहीं तो बीस रुपये महीने में जरूर खर्च होते होंगे। अब जरा बताना तो कि इन बीस रुपयों में क्या-क्या काम हो

---

1 आना-जाना।

सकते थे ? महीना खत्म होते ही घर में एक-एक पैसे की मोहताजगी[1] हो जाती है और बगैर पहली तारीख के दुनिया का कोई काम नहीं हो सकता। अगर इतना ही रुपया, जिसको तुम सनीमाबाजी में लुटाते हो, पड़ा रहता तो क्या दूसरे मौके पर काम न आता। मगर यह तो मेरे कहने से तुमको जिद हो जाती है। जब मैं कहती हूँ सनीमा न जाओ तो जरूर जाते हो। यह मैं जानती हूँ कि दुनिया में और किसी चीज का तुम्हें शौक नहीं है, और कोई खेल-तमाशा नहीं देखते हो । तो इसके लिए भी कोई उसूल होना चाहिए। महीने में चार रोज तुम्हारे शौक के लिए काफी हैं। मगर तुमने जैसे कसम खा ली है कि महीने में किसी दिन भी नागा नहीं होगा। दुनिया में तुम्हीं को तो एक सनीमाबाजी का शौक है और क्या किसी के आँखें नहीं हैं ? और किसी का दिल नहीं चाहता होगा ? मगर नहीं, तुमको तो जैसे अफीम का नशा हो गया है। कहते हो, निगाह कमजोर होती जाती है। निगाह कमजोर क्यों न हो। रोज तो तुम सनीमा देखने जाते हो, फिर भला आँखों पर क्यों न असर हो। दिन में तो बारह घंटे दफ्तर में आँखों से काम लेते हो। फिर तुम्हीं बताओ, नजर क्यों न कमजोर हो। चौबीस घंटे में चार घंटे तो आराम के लिए निकालना ही चाहिए। माना कि खुदा ने आँखें देखने के

---

१ अभाव या विवशता।

लिए ही दी हैं, मगर आराम के लिए भी तो एक वक्त दिया है। काम के वक्त काम, आराम के वक्त आराम से कभी नुकसान नहीं होता। अब बताओ, इधर तो महीने में बीस रुपये सनीमावालों की नजर करते हो और फिर जब आँखों में खराबी पैदा हो जाती है तो डाक्टरों के पास दौड़ते हो। दस-बीस रुपये दवा में खर्च करते हो, सौ-पचास रुपये डाक्टरों की जेब में डालते हो, और फिर भी आराम नहीं होता। आराम कैसे हो ? इधर दवा भी किये जाते हो, उधर सनीमा भी दौड़े जाते हो। अगर यही रुपया अपने दिल व दिमाग पर खर्च करते तो दफ्तर में दुगना काम कर सकते। कुछ तरक्की की भी उम्मीद होती। अफसर समझता है, यह बड़े काम का आदमी है, मगर वहाँ तो दफ्तर का कभी काम भी हो सकता होगा। और हो भी कैसे ? रात भर सनीमा में गुजारोगे तो दफ्तर में नींद आवे ही गी। और उसका नतीजा भी यह होना चाहिए कि एक तो पूरा काम न होगा, दूसरे जो काम होगा उसमें भी सैकड़ों गलतियाँ। जुर्माने होंगे, तनख्वाह कटेगी, घर का खर्च पूरा न होगा, यही हाय-हाय मची रहेगी, मगर तुम एक कान सुनते हो दूसरे कान उड़ा देते हो, न किसी के कहने-सुनने का ध्यान, न खुदा का डर। कहने को तो बड़े कठमुल्ला बनते हो, मगर सनीमा देखने में न अजाब[1] का ध्यान आता

---

१ पाप।

है न सवाब[1] का। और-और बातों में तो शरह[2] देखी जाती है, मगर सनीमा के मामले में किसी शरह की जरुरत नहीं। तुम्हारी तरह के लोगों ने मजहब को खेल बना रक्खा है। खुदा न करे कि तुम्हारी तरह किसी और को सनीमा का शौक पैदा हो। रुपया बरबाद, सेहत[3] खराब, और गुनाह[4] का तो तुमको खौफ ही नहीं आ सका। तुम तो पट्टा लिखा-कर आये हो. जन्नत[5] तुम्हारी मिलकियत[6] है। फिर भला तुमको क्यों ख्याल होने लगा। उफओह ! या-खुदा, इन सर-कारी दफ्तरों में भी छुट्टी हफ्ते में एक दिन इसीलिए होती है कि लोग आराम करें। मगर तुम सनीमा देखने में किसी दिन तातील[7] नहीं करते। ऐसी लत किस काम की, जो इन्सान को दीन-दुनिया, दोनों से खो दे। ईमान का तुमको कुछ ध्यान ही नहीं और अब दुनिया की कुछ परवाह नहीं। यही क्या कम है कि परसों तुम्हारे मामू बम्बई जैसे मुकाम से आये और आने के दो दिन पहले तुमको स्टेशन पर आने के लिए तार भी दिया कि ठीक वक्त पर पहुँचना, मुनतजिर[8] रहना। मगर तुमको सनीमा से कब फुर्सत कि तुम इनका इन्तिजार[9] करते, साथ घर ले जाते, इज्जत से ठहराते। बेचारे इतने दिनों के बाद खुद ही तुमको देखने आये थे। कुछ उनकी खातिर-तवाजो[10] करते। खैर, ये सब

---

१ पुण्य। २ शास्त्रीय व्यवस्था। ३ स्वास्थ्य। ४ पातक। ५ स्वर्ग। ६ जमादारी। ७ छुट्टी। ८ प्रतीक्षा करनेवाला। ९ प्रतीक्षा। १० स्वागत-सत्कार।

बातें चूल्हे-भाड़ में गईं, उन बेचारों को घर का पता भी नहीं मालूम था। घंटों परेशान हुए तो घर मिला। सनीमा देखने जाते वक्त उनसे मुलाकात भी न की। खुदा तुम्हारी सनीमाबाजी को सलामत रक्खे, जिस से वह तुम्हारी सूरत भी न देख सके। भला वह क्या कहते होंगे? अब बताओ, यह कोई अकलमन्दी है? फिटकार है तुम्हारी इस सनीमावाजी पर कि जिससे अजीज व[1] अकरबा से ताल्लुकात[2] भी छूट जाते हैं। वह अपने दिल में क्या खयाल करते होंगे और क्या सोचते होंगे कि कैसे भले भांजे को देखने गये थे कि जिसने सनीमावाजी में मामू का इतना भी ख्याल न किया कि कोई मेहमान हमारे घर आया है! इस पर भी कहते हो कि मैं बड़ा पढ़ा-लिखा हूँ। अच्छा तुम पढ़े-लिखे सही, मगर यह तुम्हारी अक्ल को क्या हो गया है? दुनिया के सारे काम पड़े रह जाते हैं, मगर सनीमा देखना किसी दिन भी बंद नहीं होता। अब बताओ कि अच्छी भली बरसाती पंद्रह रुपये की तुमने खो दी। दफ्तर या ही पानी बरसते में जाना पड़ेगा। जाओ, फिर कोई क्या करे। अगर तुमको कुछ अपना ख्याल होता तो महीना भर सनीमा न देखते। वही रुपया आज काम आता, बरसाती खरीदते और दीगर[3] दस जरूरतें और भी पूरी होतीं। मगर भला तुमको इसका क्या ख्याल। सबेरे दस

---

१ बन्धु-बान्धव, संबंधी। २ संबंध। ३ अन्य।

बजे तक ऊँघा करते हो, और कुछ नहीं, जब रात भर सनीमा देखोगे तो उसका नतीजा इसके सिवा और क्या होगा। हाँ, हमको मालूम है कि लारेंस कम्पनी से 'बिल' आया है, चालीस रुपया ऐनक के दाम देने हैं। फिर अदा करो; मुझसे क्या कहते हो? कुछ मेरे पास तुमने कोई रकम जमा करने को दी नहीं थी कि मैं निकालकर दे दूँ। जब तुमको सनीमा देखने से छुट्टी मिले तो घर में पैसे भी जमा हो सकें। अब जाओ, मैनेजर सनीमा से अपनी ऐनक का बिल भी अदा करा दो। जहाँ हजारों रुपये सनीमा देखने में खर्च करते हो, और जहाँ से बीमारी साथ लाये हो कि ऐनक खरीदना पड़े। जितना कमाते हो, उसका सबसे बड़ा हिस्सा सनीमा देखने में खर्च कर देते हो। घर में कानी कौड़ी भी नहीं बचती। अब यह बिल कहाँ से अदा किया जाय? अगर आज वही रुपया मौजूद होता तो एक बिल क्या, ऐसे-ऐसे न मालूम कितने बिल अदा किये जा सकते थे। मगर तुम न सनीमा देखना छोड़ोगे और न बिल की अदायगी ही होगी। घर की अलग बर्बादी है। मैं कहाँ तक अपनी जान खपाती रहूँगी। मेरा दिल भी तो चाहता है कि मैं सनीमा देखूँ, अपने लिए कुछ खरीदूँ, बच्चों के कपड़े-लत्ते दुरुस्त करूँ; मगर कहाँ से करूँ! जो तनख्वाह होती है, वह तुम्हारी सनीमाबाजी की नजर हो जाती है, और यहाँ सिर्फ ख्याल ही रह जाता है।

खानगी[1] मामलों पर

तुम अपने सिवा और सुनते किस की हो ? न अकेले दुकेले की तुमको परवाह, न देर-सबेर का ध्यान, न अच्छे बुरे की फिकर। अपना जब जी चाहा आये जब जी चाहा गये। कोई कब बात-चीत करे, कब कुछ कहे-सुने। और अगर कहे भी तो तुम सुनते कब हो। अभी कल ही की तो बात है कि मैंने खुदा जाने क्या-क्या कहा, मगर तुमने कोई न सुनी। मैं चीखती रह गई और तुम अपने दोस्तों के साथ चलते बने। भला ऐसी जब हालत हो, घर की अच्छी-बुरी बात किससे कही जाय ? फिरिश्तों से ? अगर किसी काम में सलाह की जरूरत हो तो किससे ली जाय ? बहुत सी बातें ऐसी होती हैं, जिनको तनहाई[2] में ही बताना मुनासिब होता है। खुदा के फजल[3] से घर में और कोई है भी तो नहीं। एक ले दे के तुम्हीं हो या मैं। तो फिर बताओ कि आखिर क्या हो ? तुम समझते हो कि घर की जिम्मेदारी

---

१ घर के। २ एकान्त। ३ कृपा।

सिर्फ मुझी पर है। तो फिर काहे को इतनी बातों में बहला रक्खा है? जब तुमसे कुछ नहीं हो सकता तो यह सब कारखाना दिखाने के लिए क्यों बना रक्खा है? बेहतर[1] है, बाहर तक के सब नौकरों को जवाब दे दो और किसी होटल में एक कोठरी लेकर रहना शुरू कर दो। घर की उलझनों से छुटकारा मिल जायगा। मैं भी रोज-रोज की दाँता-किल-किल से छुट्टी पा जाऊँगी। मैं और मेरा बच्चा, कौन बड़ा भारी खर्च है? पाव भर आटा तो दोनों वक्त खाऊँगी। और फिर मैं भी अपने बाप के घर चली जाऊँगी। न घर की कोई फिक्र होगी, न नोन-तेल-लकड़ी का झगड़ा बाकी रहेगा। खुदा के फजल से वहाँ सब कुछ है, किसी चीज की कमी थोड़े ही है। फिर और क्या करूँगी? एक कहावत है कि खिलावे घी-शक्कर, लगावे टक्कर।

तो तुम्हारी तो यही मिसाल है। इस बेकसी[2] में जीना किस काम का? बहुत रुपया लाये, बहुत चीजें लाये, तो मेरे किस काम का? गज़ब खुदा का? हफ्तों गुजर जाते हैं और बात करने को तरसती हूँ। किसी काम के लिए कहना तो दरकिनार, कोई जरूरत हो तो गूँगी-बहरी बनी बैठी रहती हूँ। आज कितने दिनों से सोच रही थी कि तुमसे कहूँगी कि एक थान तनजेब ला दो—मेरी साड़ियाँ फट गई हैं। मगर तुमको बात करने की कहाँ छुट्टी! अगर

---

१ अच्छा। २ असहाय अवस्था।

भूख न लगे तो शायद तुम मकान के अन्दर पैर ही न रक्खो। इरादे ही इरादे से एक हफ्ता गुजर गया और एक तरफ आये और परछाहीं की तरह गायब हो गये।

तुम्हारी तरह दुनिया में शायद ही कोई हो। किसी बात पर ध्यान ही नहीं देते। अब मैं भी हर काम को ऐसे ही होने दूँगी, चाहे बने, चाहे बिगड़े।

बीस हजार बार तुमसे कहा होगा कि पिछले कमरे का दर्वाजा बहुत बोसीदा[1] हो रहा है; अगर जरा-सा भी झोंका लग जाय तो जमीन पर गिर पड़े। मगर तुमको क्या फिक्र! अगर कहीं किसी दिन किसी के ऊपर गिर गया तब तो फिर और लेने के देने पड़ जायँगे। यह न हुआ कि देखते और ठीक कराने की कोशिश करते। अगर तुम खुद न कर सकते तो मालिक-मकान से समझा कर कहते कि वह बनवाये। न बनवाये तो उसका मकान छोड़ दो। क्या घर ही में गुस्सा दिखाने को हो? बाहर भीगी बिल्ली बने रहते हो। आग लगे इस घर में! कहीं से भी ठीक-ठिकाने का नहीं है। जहाँ पैर रक्खो, जमीन धँसती चली जाती है; जहाँ कील गाड़ दो, दीवार उखड़ी चली जाती है। मगर तुम को क्या, तुम तो कहीं दो-चार घंटे मेहमान की तरह आ जाते हो। आखिर ये सब बातें ऐसी हैं कि नहीं कि तुम्हारे

---

1 जर्जर।

कानों में डालती ? भला इनको तो सुन लेते, न सही कुछ और।

परसों रात से न मालूम कौन बदमाश ढीले फेंकता है। कल एक ढीला बेचारी रामरतिया के पास गिरा। वह चाय के बर्तन धो रही थी। वह तो खुदा ने बचा लिया, नहीं तो बेचारी की खोपड़ी लहूलुहान हो गई होती। और बर्तनों का अलग नुकसान होता। दस पन्द्रह रुपये का सेट चकनाचूर हो जाता। मैं अकेली क्या कर सकती थी। बेचारी रामरतिया कोठे पर से चीख-चिल्लाकर चुप हो रही। आज फिर ढेले आये। कहीं ये बातें औरतों के बस की हैं। मर्द हों तो देखें-भालें, लोगों से पूछें, चार मोहल्लेवालों को जतायें, पुलिस में रिपोर्ट लिखायें, जाँच-परताल हो। मगर तुमको इन बातों को सुनने और करने का मौका कहाँ! सुबह हुई कि जल्दी-जल्दी दफ्तर जाने की तैयारी करने लग गये; शाम हुई तो दोस्तों से कहाँ छुट्टी! अगर किसी तरह उन से छुटकारा मिला तो तुम सारे शहर का चक्कर लगाये बिना कब मानते हो। और फिर ऐसे वक्त वापस आते हो कि जब आदमी दिन भर का थका-माँदा सोता रहता है। हाँपते आये और काँपते चल दिये।

मेरा काम बताना ही तो है। करना न करना तुम्हारा काम है। मैं अगर घर से निकलती होती तो मुझको तुम्हारी परवाह भी न होती। मैं आप ही ये सब काम कर लेती।

नाम तो है कि घर में मर्द है, मगर तुम औरतों से भी गये-गुजरे हो, खुदा महफूज रक्खे।

अच्छा तो तुम यही कह दो कि मुझसे यह सब कुछ नहीं होगा, तो मैं भी तुम से कहना छोड़ दूँ। जो कुछ खुदा की मर्जी होगी, वह तो होकर ही रहेगा—मेरे बस में इसके सिवा और क्या है कि जो कुछ गुजरे, तुम को बताऊँ, जो बात हो, कहूँ। सुनो चाहे न सुनो, मैं औरत जात नाकिसुल[1]-अक्ल तो हूँ ही।

मैं क्या जानती नहीं कि अपने घूमने-फिरने के लिए रोज दफ्तर का बहाना किया करते हो और फिर छः बजे शाम से बारह बजे रात तक घूम-फिर कर काम करते हो, और मुझ को बेवकूफ बनाते हो, जैसे मैं ऐसी बेवकूफ हूँ कि कुछ समझती ही नहीं। मैं तो सोचती हूँ, होगा, दिन भर दफ्तर में माथापच्ची किया करते हैं, शाम को घूम-घाम लें। मगर घूमना क्या हुआ तमाशा हुआ कि किसी दिन नागा ही नहीं होता। आदमी किसी दिन तो अपने घर की खैरियत पूछ लेता होगा। तुम्हारे ही दफ्तर में रोज रज्जन काम करता है, और फिर दूसरों की मातहती में, मगर ठीक दस बजे जाता है और फिर चार बजे का आया दूसरे दिन दस बजे ही दफ्तर जाने के लिए निकलता है। आखिर वह भी तो

---

१ मंदबुद्धि।

घर का अकेला ही है। न कोई दूसरा, न तीसरा। दफ्तर का काम करता है, घर का सौदा-सुल्फ खरीदता है और शाम को अपने छोटे बच्चे की उँगली अपने हाथ में पकड़ता है, बच्ची को गोद में लेता है, और थोड़ी देर में घूम आता है। यह नहीं कि तुम्हारी तरह सुबह का गया कल दूसरे ही दिन सुबह को घर वापस आये। अगर ऐसा करता तो काहे को भला उसका घर-बार दुरुस्त रहता! देखो, कितना छोटा सा मकान है; मगर घर को दुरुस्त बनाये रहता है। अगर मजदूर नहीं मिलते तो खुद ही धोती बाँधकर ठीक-ठाक करता है। अभी बेचारे की उम्र ही क्या है, मगर बदकिस्मती[1] से सारा घर-गिरस्ती का बोझ उसके सिर पर पड़ गया है। मगर वह भी निबाह रहा है। जिधर सुनो, उसी की वाहवाह सुनाई देती है। खुदा करे, सभी ऐसे हों और तुमको भी कुछ अपने घर का ध्यान आवे।

मियाँ, मैं ही ऐसी हूँ कि इस हालत में भी निबाह रही हूँ। अगर कोई दूसरी होती तो तुम्हें भी मालूम पड़ता। यह रोज-रोज का घूमना फिर गायब हो जाता। मैं जो चुप रहती हूँ तो तुम मुझको और जलाते हो और परेशान करते हो। और मैं अपना फर्ज[2] समझकर यह सब कुछ बरदाश्त[3] कर लेती हूँ। क्या करूँ, खुदा ही ने मुझे बदनसीब[4]

---

१ दुर्भाग्य। २ कर्त्तव्य। ३ सहन। ४ अभागा।

बना दिया है। नहीं मालूम, मैं अपने मा-बाप को क्यों खल रही थी कि लेकर कुएँ में डाल गये। खुदा उनका भला करे। अगर मैं इंतजाम[1] न करूँ तो घर में चूहे लोटने लगें। खैर, जब तक मुझसे बन पड़ता है, कर रही हूँ और जब ऐसे ही परेशान करते रहोगे तो मैं भी लात मारकर चली जाऊँगी।

कभी यह न हुआ कि सीधी तरह बात करते, कुछ हमारी सुनते कुछ अपनी कहते। हाय, मैं क्या करूँ! तुमको तो बोलना भी दूभर हो जाता है। जब बाहर रहते हो, तब तो दोस्तों में खूब चहकते हो, मगर जब घर में आते हो तो बिलकुल गूँगे-बहरे बन जाते हो। अव्वल तो ऐसा मौका ही कम आता है; और अगर कोई नहीं मिलता तो घर में पैर रखते ही पड़कर सो जाते हो। या खुदा, क्या कागज, कलम, दावात लिये उलट-पुलट किया करते हो। यह है तुम्हारी करतूत। अपना-पराया भी तो कोई नहीं है कि जिस से कुछ अपने जी का हाल कहूँ। थोड़ी देर के लिए दिल-जोई[2] करके एक कैदखाने में डाल दिया है। खुद मजे करते हो और मैं घर में अकेली बैठी अपनी किसमत[3] को रोया करती हूँ।

---

१ प्रबन्ध। २ मीठी बातों से मन रखना। ३ भाग्य।

मकान बदलने पर

देखो, आखिर तुमने मेरा कहा न माना, अब वही भुगतना पड़ रहा है, या नहीं ? कैसा अच्छा खूबसूरत खुला हुआ हवादार मकान छोड़ना पड़ा ! मैं जो पहले कहती थी कि जियादा फजूल-खर्चियाँ न करो। किराये में पन्द्रह दिन की देर हुई, और यह नतीजा हुआ। अब देखो ना, पहले तो उससे पाँच रुपया जियादा किराया देना पड़ेगा, और फिर यह किसी काम का नहीं है। क्या करूँ, मुझे तो जैसे यह मकान काटे खाता है। अभी तो सिर्फ दो ही दिन आये हुए हैं, जान सूखी जाती है। ना बाबा, मैं तो इसमें हरगिज न रहूँगी। मुझसे तो एक मिनट भी इसमें न रहा जायगा। जरा दर्वाजों को तो देखो। भला इनसे कौन निकलेगा ? जो निकलेगा, उसकी खोपड़ी भी लहूलहान हो जायगी। ये छतें तो जैसे सिर पर रक्खी हुई हैं। मैं पूछती हूँ कि भला तुम्हारे दोस्त, जिनकी लैन-डोरी लगी रहती है, जब आवेंगे तो कहाँ बिठाओगे ? यही ले-दे के एक कमरा है; इसमें चाहे हम लोग रहें, चाहे तुम्हारे दोस्त बैठें।

और यह बावर्ची-खाना[१] है कि पाखाना! भला इसमें बैठकर कौन खाना पकावेगा? कहीं साँस लेने की जगह नहीं है। कहाँ इसमें बर्तन समायेंगे, कहाँ लकड़ियाँ रक्खी जायेंगी, कहाँ चूल्हा बनेगा, कहाँ जिंस[२] का ठिकाना है। सारी चीजें बेकार जायँगी। छत को देखो, बिलकुल काली कोयला हो रही है। भला कोई कैसे सँभाल कर खाना तैयार करेगा। जो चीज बनाई जायगी और जरा भी बर्तनों का मुँह खुला कि मनों मिट्टी समा जायगी। छत से कालिख गिरकर सब कोयला कर देगी। सैकड़ों मन तो कोनों में कूड़ा-कर्कट भरा हुआ है। कोई ऐसी दीवार नहीं है, जिसमें मनहूस[३] मकड़ी का जाला न लगा हो। और मैं कहती हूँ, आदमी देख-सुन तो लेता है। मगर तुम्हारी समझ में इतना भी नहीं आया कि इसमें आदमियों को रहना है कि जानवरों को। तुमको क्या, तुम तो सराय के मुसाफिरों की तरह कहीं दो-एक घंटे के लिए आ जाओगे। मैं तो घबरा-घबरा कर मर जाऊँगा! कहीं हवा का गुजर नहीं है। कमरे तो देखो, बिलकुल कबूतर-खाने[४] हो रहे हैं, जिनमें न हवा का रास्ता, न रोशनी का पता। धूप तो कभी काहे को आने लगी। बदबू से दिमाग काहे को बाकी रहेगा। तौबह-तौबह! और तो और जरा पाखाने को तो देखो। बिलकुल

---

१ रसोईघर। २ भोजन बनाने की कच्ची सामग्री आटा दाल चावल आदि। ३ अशुभ। ४ ढाबली।

रास्ते में तो उसकी नालियाँ बनी हुई हैं। आने-जानेवालों को तो कय हो जायगी। और मेरा तो जो कुछ हाल होता है, उसको खुदा ही जानता है। चार-छः महीने जिन्दा रहना तो बड़ी बात है, दो ही दिन में बुरा हाल हो गया। अच्छा, मैं कहती हूँ कि जब किराया इतना देना था तो क्या और मकान न थे ? शहर में सैकड़ों-हजारों मकान खाली पड़े होंगे, मगर तुम क्या करो, तुमको तो काहली[1] के मारे इतना मौका ही नहीं मिलता कि कोई मकान देख-भालकर ठीक करो। खरे-खरे पचीस रुपये आँख बन्द करके पेशगी गिन दिये--समझे कि महल मिल गया। तुम्हें क्या गरज कि खुद देखने जाते और अच्छी-बुरी राय कायम करते। तुम्हारे ही दोस्तों में से किसी का होगा। उसने समझा होगा कि कौन इतना किराया देगा और कौन ऐसी जगह रहेगा—लाओ तुम्हीं को फाँस लूँ। बस, तुम समझे कि ताजगंज[2] का रौजा मिल गया। खुदा बुरा करे मकान बनानेवालों का! एक दर्वाजा—खुदा की पनाह—न दूसरा दर्वाजा न खिड़की न जाली, चारों तरफ अँधेरा-घुप, कहीं हाथ मारा नहीं सूझता। दिन में लैम्प जलाये जायँगे तो कहीं इन कमरों में रहा जायगा। इतना अँधेरा है कि चाहे साँप-बिच्छू भी डस जाय तो पता न चले और इन्सान तड़प-तड़पकर जान दे दे। मैं कहती हूँ कि इस मकान में अच्छी-भली सेहत[3] खराब हो जायगी या नहीं ?

---

१ सुस्ती या आलस्य। २ आगरे का ताजमहल। ३ स्वास्थ्य।

अरे मैं कहती हूँ कि कोई भी तो कोना ठीक होता, कोई तो जगह ऐसी होती, जहाँ दम भर बैठा जा सकता! जगह-जगह पर तो सूराख[1] हैं। कहीं चूहे उचक रहे हैं, कहीं छछूँदर छुछवा रही है, कहीं झींगुर अलाप रहे हैं, कहीं चिड़ियों की बीट का ढेर है। जिस कोठरी में जाओ, मच्छर मिन-मिन मचाये हुए हैं, जिस्म[2] से लिपट जाते हैं। जान बचाना मुश्किल है। जब से यहाँ आई हूँ, सारे जिस्म का खून खटमलों ने चूस लिया है।

उधर पानी का नल अपनी किस्मत को अलग रो रहा है—हर वक़्त तुल-तुल तुल-तुल बहता रहता है। दो गज का आँगन; आधे में नल का पानी सोखा करता है, आधे में नाली फैली हुई है। अब बताओ, अगर कोई जरा देर के लिए हवा में बैठना-उठना चाहे तो कहाँ उठे-बैठे? तुम तो खैर, दिन भर दफ्तर में रहोगे; शाम होगी, दोस्तों के साथ इधर-उधर घूम फिर आओगे, पार्कों की हवा खाओगे। ११ बजे रात तक का वक़्त इस तरह गुजर जायगा। सबेरे तक के चार घंटे रहना न रहना बराबर है। रह गई मैं, तो मैं इसी में अपनी जान खपाती रहूँगी। आज तो सारे घर में धुआँ भरा है। पानी बरसे तो कीचड़ के मारे पाँव जमीन पर न धरे जायँगे। जाड़ों में यों ही सीलन रहती है, अब अगर मलेरिया हो जाय तो कोई ताज्जुब नहीं, इन्फ्लुएंजा हो जाय तो कुछ दूर नहीं

१ छेद। २ शरीर।

है; और जो न हो जाय, वह थोड़ा। ऐसे ही गंदे मकानों से तो बीमारी फैलती है, क्या कहीं से बीमारी लाई थोड़े ही जाती है। खुदा के फजल से हमारा मकान बिलकुल बीमारियों का घर है। यह तुमने मकान नहीं लिया है, बल्कि मेरे लिए कबर ढूँढी है। सुनते हो, मेरी जान फालतू नहीं है, जो मैं इस मकान में रहूँगी। मैं इस मकान में हर्गिज नहीं रह सकती। मैं तो यों ही अब्बाजान के यहाँ जानेवाली थी। दस दिन के बाद न सही, दस दिन पहले ही चली जाऊँगी। भला मैं काहे को अपनी जिंदगी बर्बाद करूँ? मैं बैठे-बिठाये अपनी अच्छी-भली सेहत क्यों खराब करने लगी? तुम रहो, अपने दोस्तों को बुलाकर रक्खो, जिन्होंने इस मकान के लिए सलाह दी है। और फिर ऐसे गंदे मकान के लिए मैं क्यों सलाह देने लगी। मुझको कोई मुफ्त भी रहने को देता तो मैं न रहती। अच्छा तुम्हीं बताओ, इस मकान में ऐसी कौन सी बात थी, जिससे तुमको पसंद आ गया? यह भी तो नहीं है कि तुम्हारे दफ्तर ही के करीब हो। जब यह भी नहीं तो कौन सी ऐसी खूबी इस मकान में थी, जिस पर तुम रीझ गये? पास-पड़ोस में एक घर भी तो किसी भले आदमी का नहीं है, जो वक्त-बे-वक्त दिल बहला सकूँ। कहीं मोची आबाद[1] हैं और कहीं कोरी बसते हैं; कहीं धोबी हैं, कहीं कुम्हार। अगर जरूरत पड़ जाय तो किसी से एक पैसे

---

१ बसे हुए।

का नमक भी नहीं मँगाया जा सकता। कौन उनके गंदे हाथों की चीज खायगा। मुझको तो नाम लेते हुए घिन मालूम होती है। घरों को देखो तो मतली[1] होने लगती है। दर्वाजे के सामने सारे महल्ले का कूड़ा ढेर है। अगर पानी बरसा तो घर से निकलना भी मुश्किल हो जायगा। क्या कहते हो, जब मकान मिलेगा तब मिलेगा, अभी तो मेरी जान पर बनी है। बाजार भी इस मकान से दो मील है। अगर आदमी की जान जाता हो तो एक पैसे की कोई चीज मयस्सर[2] नहीं हो सकती। यह अंधा अपाहिज घसीटा अगर तरकारी वरकारी लेने जायगा तो शायद लौटकर न आयेगा। रजिया को अगर एक दिन पहले भेजा जाय तो शायद दूसरे दिन वापस आये। दाल का नमक तक मयस्सर न होगा, तुम्हारे दफ्तर जाने के पहले तो पका-पकाया खाना मिल जाना तो बड़ी बात है, यह कहो कि अगर वापसी पर भी मिल जाय तो गनीमत है। कौन ऐसा तुम्हारा बड़ा सगा है कि हवा की तरह जायगा और हवा की तरह वापस आवेगा? नतीजा यह होगा कि तुमको भी दफ्तर जाने में देर होगी और तुम्हारे हाकिम नाराज अलग होंगे, तुम्हारे ऊपर जुर्माना होगा, महीने पर तनख्वाह कटेगी और खर्च में कमी होगी।

तौबह-तौबह! मैं क्या करूँ! उफ, इसी मकान में बारिश[3]

---

१ जी मिचलाना। २ प्राप्त। ३ वर्षा।

कैसे गुजरेगी ! वह देखो सामनेवाले दालान में दर्वाजे के पीछे कितनी बड़ी खन्दक[१] है, जैसे भेड़िये की माँद। खुदा न करे, अगर कहीं भूले से किसी का पाँव इसमें पड़ जाय तो छठी का दूध याद आ जाय। और कुछ एक ही जगह थोड़े, यही हालत मकान भर में है। जहाँ पाँव रक्खो वहीं एक खन्दक; जहाँ बैठ जाओ, वहीं की जमीन धँसने लगती है; जैसे पूरा मकान किसी कुएँ या तालाब को पाट कर बनाया गया हो—यही तो रह-रहकर मुझको बड़ा ताज्जुब होता है कि मकान की जमीन इतनी पोली क्या है ! छतों का यह हाल है कि अगर बारिश हो जाय और दबाव पड़ जाय तो सारी छत जमीन पर आ जाय। दीवारों का यह हाल है कि हवा के साथ पलास्टर[२] उखड़कर ऊपर आ जाता है। सारे मकान को लोने ने खा रक्खा है। अब भला बताओ, कोई कहाँ रहे, कहाँ बैठे ! रात को सोती हूँ तो मारे डर के नींद नहीं आती। दीवार इतनी छोटी-छोटी हैं कि हर वक्त डर लगा रहता है कि कहीं कोई फाँद न आवे—बदमाश कमीनों का महल्ला है, कौन जाने, किसी के दिल में क्या है। खुदा ही हाफिज्[३] है।

और सुनो, ये दर्वाजे में किवाड़ लगे हैं, सब चीड़ की लकड़ियाँ हैं या तमाशा। जो चीज है अजीब। जैसे कोई बच्चों का घिरौंदा बना हुआ है। कसम खाकर कहती हूँ कि मेरे यहाँ तो इससे अच्छा मकान जानवरों के लिए बना है। उस

---

१ गढ़ा। २ पलस्तर। ३ रक्षक।

में चार। तरफ हवा आने के लिए जालियाँ तो लगी हुई हैं—रोशनी आती है। चलो बस, जिंदगी हो चुकी। एक तो घर ही के काम-काज के झंझट क्या कम थे, अब यह दूसरा झंझट तो जान ही लेकर साथ छोड़ेगा! मैं यों ही बरसों से बीमार हूँ; इस घर में तो जान के लाले पड़ जायँगे। मगर तुमको क्या, जान जिसकी जायगी, जायगी, तुमतो आराम से रहोगे! फिर मैं न रहूँगी तो नया मकान भी मिल जायगा। मगर कहे देती हूँ कि इस मकान को बदलो। एक दिन से ज्यादा मैं इसमें नहीं रहने की। और अब की जो मकान लो, वह मुझे भी दिखा दो। बला से एक महीने का किराया गया तो गया, जान तो किसी तरह बचे।

तरक्की न होने पर

ऐ वाह ! इस महीने में भी वही तनख्वाह ! तुम तो कहते थे कि इस माह[1] में तरक्की होगी—तरक्की होगी; मगर फिर वही मोची के मोची रहे—तरक्की न हुई । निगोड़[2]-मारी सल्तनत[3] का मिलना हो गया, जो मिलने ही नहीं आती। फिर भला मैं कहती हूँ कि इस नौकरी से क्या फायदा ? मिनट भर की देर हो जाय तो चवन्नी कट जाय। और बरसहा[4]-बरस से काम करते हो, मगर चन्द[5] टिकियों[6] का इजाफा[7] नहीं होता। क्या रात-दिन की पिसौनी का यही नतीजा है ? आखिर हाथ-पाँव कटाये क्यों बैठे हो ? अपना देखा करो। कहीं और मिले कर लो, इसको लात मारो, आग लगाओ, भाड़ में झोंको। रात-दिन पीसते-पीसते आधे रह गये हो, और तरक्की के नाम पर ठेंगा ! सुबह हुई तो साहब के बँगले पर भागे चले, रात हुई तो साहब के बँगले का।

---

१ महीना। २ औरतों की एक गाली। ३ राज्य। ४ अनेक वर्षों से। ५ कुछ। ६ रुपयों। ७ वृद्धि।

तवाफ[1] कर रहे हो; मगर बीस रुपल्ली की तरक्की तनख्वाह में न हो सकी। नौज, तुम्हारा ऐसा दफ्तर किसी का हो! आदमी इसीलिए दिन-रात मेहनत करता है, जान खपाता है कि उसका बदला मिलेगा, हाकिम खुश होगा तो तनख्वाह बढ़ेगी। मगर यहाँ का अजब दस्तूर है! जैसे कोई अच्छा-बुरा देखनेवाला ही नहीं है।

कब से सुनती चली आ रही थी कि अगले महीने तरक्की होगी। मैं भी अपने जी में खुश थी, आसरा लगाये बैठी थी, क्या-क्या मनसूबे बाँधे थे। मगर अल्लाह की करनी, सारी खुशी खाक में मिल गई। ईमान की कसम, अगर मैं होती तो एक मिनट न ठहरती, और निगोड़ी नौकरी पर लात मार देती, दफ्तर को आग लगाती! मगर तुम हो कि अपाहिज बने बैठे हो। हाकिम लोग भी समझते होंगे कि तुम कर ही क्या सकते हो। इसीलिए वह तरक्की भी नहीं देते। काम लेने को तो सब थे, अब कोई बात नहीं पूछता। जब मैं जानती कि साहब अपनी जेब से बीस रुपये बढ़ा देते और कहते कि बाबू, यह लो मैं अपने पास से देता हूँ। जब तक तरक्की न हो इसे सर्फ[2] करो। जब देखो, साहब के यहाँ डाली चली जाती है, जब देखो, साहब के लिए मुर्ग पक रहा है, मक्खन-बालाई की रसद लगी हुई है। अब

---

१ प्रदक्षिणा या फेरी। २ खर्च।

बताओ, क्या फायदा हुआ ? जब मैं कहती थी कि यह बंजर खेत है, इसमें बीज न डालो तो तुमने एक न सुनी। अब वह एक भी काम न आया।

गजब खुदा का ! दस रुपये तनख्वाह पानेवाले चपरासियों की तरक्की हो गई; पंखा-कुली, जमादार, मेहतर, भंगी, सबको एक-एक महीने की तनख्वाह मिल गई, और तुमको किसी ने पूछा भी नहीं। क्या साहब लोगों का यही इंसाफ है ? ना, मैं न मानूँगी, तुम्हीं में कुछ फी[1] है, वर्ना तरक्की हो तो सबकी हो, यह क्या कि एक को तो तरक्की दी जाय और दूसरे को ठेंगा दिखाया जाय।

मैं पूछती हूँ कि क्या तुम पढ़े-लिखे नहीं हो या तुमको काम नहीं करना आता या क्या बात है कि जो सबकी तरक्की हुई और तुम वैसे ही निखट्टू रह गये। आखिर कोई तो बात होगी। दफ्तर में गैरहाजिर रहते होगे, काम न करते होगे, इधर-उधर ऊँघते रहते होगे; उन्होंने तरक्की रोक दी होगी। तुम न जानने को न जानो, मैं तो जानती हूँ। नहीं, क्या ऐसा दुनिया में अंधेर होता है कि न खाने-पीने का सवाद, न लेटने-बैठने का लुत्फ, न घूमने-फिरने का मजा ! जब देखो, निगोड़ी गिट-गिट ! दफ्तर का काम अटम[2] लगा रहता है, हफ्तों मैं बातचीत करने को तुमसे तरसती हूँ, इस पर यह

---

१ दोष। २ ढेर।

हाल कि तरक्की न हुई। हटाओ भी इस नौकरी को। सुबह ही इस्तीफा लिखकर भेज दो। आँख खुली तो दफ्तर—आँख बन्द हुई तो दफ्तर। अल्लाह राजिक[1] है। उसने पैदा किया है तो खाने को भी देगा। न गोश्त-पुलाव खाना, दाल-रोटी ही पर बसर[2] कर लेना। यह रोज-रोज का झंझट तो मिट जायगा, किसी का मुँह तो न देखना पड़ेगा!

आज बड़े साहब ने बुलाया है, कल छोटे साहब के यहाँ हाजिरी देना है, परसों इंजीनियर साहब के साथ बस्ता बगल में दबाये चले जा रहे हैं। आखिर काम की भी कोई हद होती है। और फिर इस पर यह तुर्रा कि मामूली-मामूली चपरासियों की तरक्की हो गई और तुम बस तेली के बैल की तरह पिसाई तो करते रहते हो, मगर तरक्की के नाम पर ठेंगा।

देखो, खुशामद का यह नतीजा होता है। क्या फल मिला? औरों को छः छः महीने में तरक्की मिले और तुमको दूसरे साल भी तरक्की न मिले! मेरा तो खून खौल रहा है, तन-बदन में आग लगी हुई है। जब आज तरक्की न मिली तो अब क्या उम्मीद की जाय? एक माह बाद फिर तरक्की होगी? 'ईद के पीछे[3] टर' मशहूर है। कौन तुम्हारा ऐसा सगा बैठा है, जो तुमको उठाकर छः महीने की तनख्वाह तरक्की में दे देगा? अब क्या उम्मीद! सबको तीन-तीन महीने की

---

१ खाने को देनेवाला। २ गुजर। ३ एक कहावत।

तरक्की हो गई। अब क्या खाकर तरक्की होगी ! बस, जिसकी किस्मत में तरक्की होनी थी, हो गई।

सोचा था कि अब की महीने तरक्की होगी तो मैं भी मुन्ने मियाँ का अक़ीक़ा (मुंडन) कर डालूँगी, अपने तमाम अज़ीज़ व अक़ारिब को मेहमान बुलाऊँगी, छः माह की एकबारगी तनख्वाह मिलेगी, सारा काम बन जायगा। लो, वह सारे मनसूबे—मनसूबे ही में रह गये और तरक्की न हुई। अब कहाँ से इन्तिज़ाम करूँगी ? पहलेपहल का काम था निगोड़ा एक; सामान थोड़ा ही करना होता है, हजार बखेड़े, हजार झगड़े होते हैं। परजों को जोड़ा, बागा, निछावर, सब ही कुछ तो करना पड़ता है। अब क्या करूँगी ? बस, जो होना था हो चुका। अगर यह उम्मीद न होती कि तनख्वाह में तरक्की होगी और छः महीने की तनख्वाह पेशगी मिलेगी तो कुछ और इन्तिज़ाम पहले से करती। घर के खर्च में किफायत का खयाल रखती, हर चीज में कमी करती। यहाँ कम्बख्त खयाल तो यह था कि तरक्की होगी और पूरे छः महीने की तनख्वाह भी मिल जायगी—किसको खबर थी कि दूर की ढोल थी।

बरसों से सुनते-सुनते तबियत आजिज[1] आ गई थी। मगर खैर, एक उम्मीद तो थी। पहली तरक्की में नाम न आया, सबर किया। समझी कि अब की सही। दूसरी मर्तबा

१ ऊब गई थी।

फ़िर गजट हुआ और नाम नदारद[1]। इस मर्तबा भी सबर किया। फिर तीसरी तरक्की का हंगामा कानों में पड़ने लगा। अब की ख्याल था कि किस्मत जागेगी, मुद्दतों की आरजू[2] पूरी होगी। मगर यहाँ अब की भी कोरे रहे। निगोड़ा दो ही एक रुपया बढ़ा देते, कुछ तो तसल्ला[3] हो जाती। न मिलते दो-चार सौ, न सही, दस-बीस-पचास तो मिलते, काम तो निकल जाता।

आखिर उनसे कोई पूछनेवाला नहीं है कि गरानी[4] का जमाना है कि खुदा की पनाह और इतनी कलील[5] तनख्वाह में भला कोई शरीफ[6] आदमी कैसे बसर करे? देखते ही देखते गल्ले[7] का निर्ख[8] बढ़ गया। ऐ अभी पिछले ही इतवार को तो आठ सेर का गेहूँ खरीदा था। अब जो मँगाया तो पूरे डेढ़ सेर कम हो गया। या अल्लाह, तू ही गरीबों की इज्जत बचानेवाला है। घर में जो गल्ला पहले दस रुपये में आता था, अब उतना ही गल्ला पंद्रह रुपये में आने लगा। भला बताओ कि अंधेर नहीं तो क्या है? गरानी का यह आलम[9], पर उनके कानों पर जूँ तक नहीं रेंगता। और फिर उनके ठेंगे को क्या गरज पड़ी है कि वे किसी के लिए कुछ करें। उनको तो कोर्मा-पुलाव, केक-बिस्कुट, मुर्गी-अंडा

---

१ न रहना। २ अभिलाषा या कामना। ३ सन्तोष। ४ महँगी। ५ थोड़ासी। ६ भद्र। ७ अन्न ८ भाव। ९ हाल।

खाने को मिला ही जाता है। अगर कहीं उनके ऊपर असर होता तो मैं देखती कि कैसे तरक्की नहा होती। जब तक आदमी पर पड़ती नहीं, उसकी अक्ल ठिकाने नहीं होती। मैं तो कहती हूँ, ऐसे लोगों का काम तो बस वाजबी[1] ही करे; यह नहीं कि अपना भी काम करो और साहब का भी नकशा बनाओ, दौरे का भी इन्तिजाम करो, रसद वगैरह भी पहुँचाओ; घी अच्छा हो, गोश्त बढ़िया हो, बटेरें हों, मछली हो, मुर्गियों के झाबे भरे हुए हों। शिकार के लिए अलग इन्तिजाम करो कि साहब जायँ तो जंगलों में उनका जी न घबराय। ऐ झाड़ फिरे इस नौकरी पर! रात-दिन खिदमतगार बने रहो और फिर भी तरक्की न हो।

लो सुनो, शुबरातन ने मेरी नाक में दम कर दिया है—जब देखो, वह बंदी अपना ही दुखड़ा रोया करती है। मैं कहती हूँ कि बाबा, तेरा इस तनख्वाह में गुजर नहीं होता तो फिर मैं क्या करूँ? नौकरी छोड़ दो, और अपना रास्ता लो, अपने घर सिधारो। कितनी मर्तबा झिड़कियाँ दीं, कितनी मर्तबा डाँट बताई कि शुबरातन रोज-रोज मेरा कलेजा न खाओ! मैंने सुन लिया है, मुझे मालूम है। बाबू साहब की तरक्की होने दो तो मैं तुम्हारी तनख्वाह बढ़ा दूँगी। कई महीने से टालते-टालते आज का दिन आ गया। अब बोलो, उसको क्या जवाब दूँ? अब तो मुझसे नहीं

---

१ उचित।

सुना जाता। अब तुम खुद अपने मुँह से कह दो, जो चाहे कह दो, रक्खो तो वाह-वा, न रक्खो तो वाह-वा। मैं कहाँ से उसकी तनख्वाह में इजाफा[1] कर सकती हूँ ? मेरा तो इतने ही में पूरा नहीं पड़ता। मैं तो कहती हूँ कि अब मैं मुलाजिम[2] नहीं रख सकती हूँ। अगर मुझे दस्त-गैब[3] हासिल होता तो यह भी कहती कि भाई इसकी तनख्वाह में इजाफा कर दो। खुद मेरे ही ऊपर इतना बार[4] हो गया है कि अब कुछ कहा नहीं जाता। इधर तुम्हारी तरक्की गायब-गुल्ला हो गई। अब किस उम्मीद पर उससे बहाना करूँ ? और भई ईमान की बात तो यह है कि वह भी ठीक कहती है। रात-दिन घर में चकरघिन्नी बनी रहती है। अपनी सारी उम्र इस घर में बसर कर दी। रत्ती-रत्ती सौदे के लिए बाजार के हजारों फेरे करती है और फिर लू-धूप में चूल्हे में जलती है। अगर वह भी दो-चार आने अपनी तनख्वाह में इजाफा चाहती है तो क्या बुरा करती है ? मेरा तो अब हियाव नहीं पड़ता कि उससे कोई हीला-बहाना करूँ। उस गरीब को क्या खबर कि मियाँ की तनख्वाह में तरक्की नहीं हुई। वह तो यही जानती है कि कचहरी-दरबार का वास्ता है—वहाँ तो जो कुछ एक मर्तबा तय हो गया, बस तय हो गया। भला वह काहे को इस बात का यकीन करने लगी कि मियाँ की तरक्की

---

१ वृद्धि। २ नौकर। ३ ऊपरी या खुफिया आमदनी। ४ बोझ।

नहीं हुई? आखिर वह तो बेचारी इस उम्मीद पर बैठी हुई थी।

कम्बख्त मेहतरों-भंगियों तक ने अपनी-अपनी तरक्की के लिए जमीन व आसमान एक कर दिया। जलसे किये, हड़ताल की, एक हफ्ते तक साहब लोगों के बँगलों में पाखाना पड़ा सड़ता रहा। आखिरकार[1] अपनी तनख्वाहें बढ़वा लीं कि नहीं? और उन्हीं से ये लोग ठीक भी रहते हैं। अब तुम अपना हाल देखो और इन मेहतरों और भंगियों से उसका मुकाबला करो। वे अच्छे कि तुम अच्छे। तुमने साहब के बँगले के दस-दस चक्कर रोजाना किये तो फिर क्या नतीजा निकला? सैकड़ों रुपयों की डाली ले गये, फिर क्या पाया? आँधी आवे, पानी बरसे, मगर तुमको बँगले जाना जरूरी। हजार दुख-बीमारी घर में हो, मगर बँगले की गैरहाजिरी न हुई। दरवाजे पर मय्यत[2] पड़ी रहे और इनके कुत्तों के रातिब का इन्तिजाम करना फर्ज था। मगर आज वह एक भी काम न आया कि सबके साथ तुम्हारी तनख्वाह में भी इजाफा हो जाता। बला से छः महीने पहले की तरक्की न होती—इस माह से तो हो जाती, कुछ तो सहारा हो जाता।

और हाँ, वह जो आपने मेमोरियल[3] रवाना किया था,

---

१ अंत को। २ लाश। ३ बड़े अधिकारी को दिया जानेवाला स्मृतिपत्र या प्रार्थनापत्र।

उसका क्या हश्र[1] हुआ ? कोई नतीजा निकला या नहीं ? तुम तो कहते थे कि बड़े साहब मुझसे बहुत खुश हैं, मुआयने[2] में तुम्हारी बड़ी तारीफ लिखी है। मालूम होता है कि तारीफ के मुआवजे[3] में तरक्की रोक ली। अब तुम्हीं बताओ, इस तारीफ को ओढ़ोगे या बिछाओगे ? जबान से कहते क्या लगता है, जब मैं जानती कि तुम्हारी तरक्की के लिए कुछ करते तो खैर एक बात थी। जबानी तारीफ से कहीं पेट भरता है ? क्या उनकी तारीफ इस गरानी को रोक देगी ? या तुम्हारे एखराजात[4] को पूरा कर देगी ? या आज मुझको मुन्ने मियाँ के अकीके में जो जरूरत है उसको रफा[5] कर देगी ? वैसे तो हाँ कह देना मैं भी जानती हूँ। कुछ नहीं, तुमको बातों-बातों में बहला दिया और दूसरों को तरक्की दे दी।

और न किसी का कहा मानो। जब मैंने कहा था कि वकालत शुरू कर दो तो कैसा-कैसा बिगड़े थे, जैसे मैंने जहर पिला दिया था। उस वक्त तो तुम बहुत उछले-कूदे थे, कहते थे कि अब वकालत में क्या रक्खा है ? अब बताओ इस मुलाजमत[6] में क्या रक्खा है ? कौन डिप्टीकलक्टर हो गये ? कौन तनख्वाह बढ़ गई ? क्या आमदनी में इजाफा हो गया ? अपनी जान खपाई, अपनी तन्दुरुस्ती बर्बाद की, डाक्टरों

---

१ परिणाम। २ निरीक्षण। ३ प्रतिफल। ४ खर्चों। ५ दूर। ६ नौकरी।

की खुशामद की, सैकड़ों रुपया फीस में बर्बाद किया, तब कहीं जाकर डाक्टरी में फिट[1] हुए और उस वक्त मुलाजमत मुस्तकिल[2] हुई। फिर इसके बाद इम्तिहान दिया। उसमें भी दिन-रात मेहनत की और उसके बाद भी कोई नतीजा बरामद[3] न हुआ। सुना था कि इम्तिहान पास करने के बाद दर्जा बढ़ जायगा, तरक्की होगी। तरक्की होना तो दर-किनार किसी ने बात भी न पूछी। मैं कहती हूँ कि अंधेर नहीं तो क्या है? एक मर्तबा तालीम[4] हासिल की, सैकड़ों रुपया उस तालीम पर खर्च किया होगा। उसके बाद फिर इम्तिहान। यह उल्ट[5] बाँस मैंने आज ही सुनी है कि उम्र भर इन्सान पढ़ता ही रहे और इसके बाद भी हासिल[6] न हसूल। अब कौन से चार चाँद लग गये? कहते थे कि हर साल बीस रुपये की तरक्की होती रहेगी। हर साल की कौन कहे, चार-पाँच साल के बाद भी तरक्की न हुई—बीस पैसे भी न बढ़े, बीस रुपये की कौन कहे। उफ ओह, तुम्हारी तो मति मारी गई है। भाई जान पिछले साल आये थे। उन्होंने कितना कहा कि चलो उनके साथ, किसी रियासत में वह इससे अच्छी जगह दिला देंगे। मगर तुमने एक न मानी, एक 'नहीं' में सारी बात टाल दी! आज अगर किसी रियासत में मुलाजिम हो गये होते तो हजारों रुपये तुम्हारे

---

१ पास। २ स्थिर या पक्की। ३ प्राप्त। ४ शिक्षा। ५ उल्टापन। ६ मिलना न जुलना।

पास भी होते। यह जो तंगी[1]-तुर्शी में बसर करते हो, यह न होता, तो दो-चार को देकर खाते और दस-बीस आदमी तुम्हारे साथ हर वक्त रहते। मगर वह तो तुम्हारी समझ में जो आ गया, वही ठीक है। बस वह पत्थर की लकीर हो गया।

मुझसे क्या कहते हो? यह तो होना ही था—मुझको पहले ही से इल्म[2] था कि तरक्की न होगी, इसलिए कि कुछ घोड़ा सुस्त और कुछ सवार सुस्त। नहीं तो अब तरक्की न हो जाती! मैं कहती हूँ कि हर छठे महीने तरक्की होती। और अब भी तुमको इसका कोई रंज नहीं है, जैसे नौकर तुम नहीं हो, बल्कि मैं नौकर हूँ। मुझको क्या गरज पड़ी है कि अपनी जान कुढ़ाऊँ, तुम जानो तुम्हारे हाकिम लोग जानें। अब आइंदा से मैं कुछ न कहूँगी—चाहे तरक्की हो चाहे भले न हो। अगर तरक्की होती तो कुछ मुझी को न भर देते, और या तरक्की होती तो अकेले मैं ही उससे फायदा न उठाती। तुम और तुम्हारे बहुत से अजीज, जो महीने में दस-पाँच मर्तबा आकर चक्कर लगा जाते हैं, वे सब फायदा उठाते। मगर आज कोई सामने नहीं नजर आता कि दिल-जोई[3] करे, सब अपने-अपने मतलब के होते हैं—दुनिया इसी का नाम है।

---

१ गरीबी। २ ज्ञात। ३ धीरज बँधाना।

मैं तो इसलिए पीट रही थी कि घर के बीसों काम रुक गये, जो तरक्की होने पर मुनहसिर[1] थे और जिनका होना जरूरी था। मगर अब क्या होता है ? न मालूम कितने आदमियों से तरक्की की उम्मीद पर वायदे कर रक्खे थे। किसी को दस रुपये देना है, किसी को पाँच देना है। अक़ीक़ा होगा तो अजीज व अकारिब, पास-पड़ोस के लोग, टोला-मुहल्ला के लोग, सभी को बुलाना पड़ेगा। जिसके घर खाया है, उसको खिलाना जरूरी है। यह तो कर्ज हसनह[2] है। और अगर बगैर कुछ किये अक़ीक़ा कर लिया जाय तो भी नहीं बनता। सब यही कहेंगे कि पहला-पहला काम और इतनी कंजूसी ! मुहल्ले में किसी के यहाँ कुछ होता है तो एक रेवड़ी तक घर में हिस्से में आती है। लोग क्या कहेंगे कि लड़के का अक़ीक़ा कर लिया और पूछा तक नहीं। न दो वक्त किसी को खिलाया जाय, एक ही वक्त की दावत दी जाय। मगर अब यह सब अगर हो तो कैसे हो ! इधर तरक्की रुक गई, उधर पिछली बीमारियों ने सिर पर कर्ज कर दिया। उसकी अदायगी भी जरूरी है। और यही दुनिया का दस्तूर है, एक लिया और एक दिया। अब यह नहीं कि लेते तो चले जा रहे हैं, देने का नाम नहीं लेते। अगर आज जिस-जिस का बाकी है, दे दिया जाय, तो कल उससे

---

१ निर्भर। २ बिना ब्याज का ऋण।

यह उम्मीद हो सकती है कि फिर जरूरत पर वह दूसरे रोज काम आ सकता है। लेकिन अब क्या किसी को जवाब दिया जा सकता है? किस्मत की बात है और अब आगे उम्मीद पर कौन जिन्दा रह सकता है।

दावत करने पर

मैं तो जानती ही थी कि आज इतवार का दिन है, तुम भला चैन से क्यों बैठने देने लगे ! और फिर तुम ही क्या करो, मेरे लिए तो आसमान से बेगार उतरती है । आज दफ्तर के अजाब[1] से फुर्सत थी तो तुमको दोस्तों की दावत की सूझी। घर फूँक तमाशा देखना तुम्हारा ही काम है। चलो, और कुछ न सही, इसी में दस रुपये सर्फ होंगे। रोज-रोज दावत। दावत न हुई अज़ाब-जान[2] हो गई। नाक में दम हो गया। कलेजा पक्का फोड़ा हो गया। कम्बख्त कोई इतवार तो नागा जाता ! आखिर मैं पूछती हूँ कि क्या तुम्हारे ही सब दोस्त हैं ? तुम भी किसी के दोस्त होगे। तुम्हारी भी कोई दावत करता है, तुमको भी कोई झूठों पूछता है, या यह बेगार तुम्हारे ही जिम्मे रहती है ? मगर बात यह है कि तुमको सबने बेवकूफ बनाया है । वह देखते हैं कि जब हमको मुफ्त खाने को मिलता है तो काहे को अपनी गिरह[3] से कुछ

---

१ झंझट । २ जी का जंजाल । ३ गाँठ ।

खर्च करने लगे। जब देखो दावत। और इन कम्बख्तों को भी हया नहीं आती। रोज-रोज खाना ही जानते हैं; यह नहीं होता कि कभी तुमको भी खिलायें। और इतवार ही पर क्या मुनहसिर[1] है, मुए तो जब देखो दरवाजे पर खड़े गला फाड़ा करते हैं। और कुछ नहीं तो लो एक ढोली पान ही चबा गये, सेरों डली-कत्था ही खा गये। मैं कहती हूँ कि इन्सान ऐसा भी बेगैरत हो जाता है, जैसे तुम्हारे दोस्त ये लुच्चे-लफंगे हैं? फिर इनकी दावत से क्या फायदा? इतना रुपया इन पर जाया[2] करना कहाँ की अक्लमन्दी है। ऐसा ही बड़ा शौक है तो किसी यतीमखाने[3] में भेज दिया करो। नाम भी हो, आकबत भी बने। लाख करो, अच्छे से अच्छा कम्बख्ता को खाना खिलाओ, और इस पर मुए मजहका[4] करते हैं, मजाक उड़ाते हैं, हजारों तरह से मुँह बनाते हैं। कोई कहता है कि दाल में नमक ज्यादा है; कोई कहता है कि गोश्त नहीं गला है; कोई कहता है कि पुलाव के चावल बैठ गये; कोई कहता है—फटे दूध की खीर पकी है। यह तो वही हुआ कि 'नेकी बर्बाद गुनाह लाजिम'। मगर तुम हो कि लुटे जाते हो। जो चीज है, दोस्तों की। और जब देखो मकान में शुहदों का एक गिरोह इकट्ठा है। कोई कहता है—यह है, कोई कहता है—वह है। अल्लाह तोबा—मैं किस अजाब में पड़ गई। सुनते हो, मुझसे अब दावत का

---

१ निर्भर। २ नष्ट। ३ अनाथालय। ४ खिल्ली उड़ाना।

इन्तिजाम न होगा। जहाँ चाहे, इन्तिजाम करो। मुझसे यह रुपये-पैसे की बर्बादी नहीं देखा जाती। न हासिल न हुसूल, इन मुर्दों को खिलाने से क्या नतीजा। अगर कुछ फायदा होता तो खैर यह भी, बर्दाश्त करती। और फिर यह देखो कि तुम्हारी तनख्वाह इतनी कौन बड़ी है कि हर हफ्ते दस रुपये दावत में सर्फ किया जावे। बीसियों झगड़े तो रोज लगे रहते हैं, इनके लिए पूरा नहीं पड़ता, मुफ्त में यह चपत और लग जाती है। नतीजा यह होता है कि पिछले हफ्ते गोश्तवाले को पाँच रुपये दिये जा सके हैं। निगोड़े करीम को दो हफ्ते से तनख्वाह नहीं दी गई। आखिर इनको देना पड़ेगा या नहीं? और देना ही पड़ेगा,, आज नहीं कल, कल नहीं परसों। मगर दिया कहाँ से जायगा? जब तुम रोज दोस्तों की दावत करते रहोगे तो क्या तनख्वाह बढ़ती जायगी? कुएँ का पानी तक सूख जाता है। एक सौ पचास रुपयों की बिसात ही क्या। खुदा की पनाह! मैं अपनी जान को कहाँ तक खपाऊँ! मैं तो मारे शर्म व गैरत के मर जाती हूँ, जब मेरे दर्वाजे पर कोई तकाजा करने आता है—तुमको क्या, तुम तो दफ्तर में रहते हो, मेरे ही सिर सारी चीख-पुकार होती है। मैं कहाँ से दूँ? और कब तक टालती रहूँ? मैं भी यह न करूँगी। जब कोई तकाजा करने आयेगा, दफ्तर में भेज दिया करूँगी। आप ही दोगे। जब दोस्तों की दावत ही रोज की जायगी

तो जाहिर है कि और खर्च कैसे चलेगा और कर्जदारों को कैसे भुगताया जायगा। अभी पिछली फसल पर तुम्हीं ने इन्हीं दोस्तों को खरबूजे उधार लेकर खिलाये थे। उसके चार रुपये अब तक नहीं दिये गये। अब बताओ कि वह रोज तकाजे करेगा तो मेरी ही इज्जत ता ऐसी ठहरी कि मैं चार रुपये का तकाजा सुनूँ, सिवा इसके अपनी जान पर यह कोफ़[1] भी बर्दाश्त करूँ। और क्या हो सकता है, तुम को कैसे होश आयेगा! गजब खुदा का, दो आने सैकड़े आम बिके और घर में एक छिलका भी आम का न लिया जा सका। और कैसे लिया जाय, जब तुम्हारे दोस्तों की दावत से रुपया बचे तो घरवालों को भी फसल की चीज नसीब हो। जो है, वह दोस्तों को खिला दो, अपनी जबान पर भूले से नमक चखने के तौर पर भी नहीं रखने को मिलता। फिर तुम्हीं बताओ कि आखिर घर तबाह होगा कि नहीं? बच्चावाला घर, दो-चार पैसे अगर वक़्त-बेवक़्त के लिए चाहूँ कि डाल रक्खूँ तो वह भी नामुमकिन[2] है। खर्च का तो यह हाल है कि और कर्ज लेना पड़ता है, भला बचाया कैसे जा सकता है? तुम्हारी फजूलखर्चियों का तो यह आलम है कि हर दावत में उम्दा से उम्दा चीज तैयार हो, चाहे घर में महीने भर तक फाका ही हो, इससे बहस

---

१ कुढन। २ असम्भव।

नहीं कि कल क्या होगा। आदमी की अक्ल ऐसी भी न मारी जाय कि जो अपनी अच्छी-बुरी बातों को न समझे।

आज दूधवाले के एक महीना पन्द्रह दिन हो गये। आखिर वह बेचारा कब तक चुप रहेगा? उसे भी तो जरूरत होगी। और वह यह कहता है कि भैया, हमारी जिन्दगी का तो यही सहारा है। रोज कुआँ खोदना और रोज पानी पीना। तो इसमें कुछ झूठ नहीं है। उसे भी अपने कारोबार को जारी रखना है। क्या वह तुम्हारी तरह रोज दोस्तों की दावत करता है? पिछले हफ्ते में सोलह सेर दूध हुआ था; इन पन्द्रह रोज में दस सेर हो चुका है। अब पूछो कि हर महीने में दस-दस रुपये का दूध चाय में खर्च होगा तो भला काहे को घर रहेगा। दिन में पाव भर दूध घर भर की चाय के लिए काफी है। मगर वह जो तुम्हारे दोस्तों की लैन-डोरा बँधी रहती है; एक आया, मुआ दूसरा आया, तीसरा आया। सेरों लकड़ी तो दिन भर में चाय के लिए फूँक दी जाती है। और जो है वह बगैर चाय पिये टलता ही नहीं। तो फिर इतना दूध जरूर सर्फ होगा। अब बताओ कि दूधवाला दर्वाजे पर तुम्हारे दोस्तों की मौजूदगी[१] में आवेगा और अपने दाम का तकाजा करेगा तो कैसी किर-किरी होगी? क्या ये मुए जो तुम्हारे दोस्त हैं, जिनको रोज चाय पिलाते हो, मुर्ग खिलाते हो, इनमें से कोई अपनी जेब

---

१ उपस्थिति।

से निकलकर दे देगा ? नतीजा यह होगा कि सभी के सामने तुम्हीं को निदामत[1] उठाना होगी, और सब लोग तुम्हीं को बनावेंगे—समझेंगे कि मियाँ इस गरीब का इतनी रकम से बड़ा काम निकल सकता है ? यह बहुत बुरी बात है। आज फिर उन्हीं की दावत पर दस रुपये सर्फ करोगे। यही आज बचते तो उसी को दे दिये जाते। मगर नहीं, तुमको इसी में मजा आता है कि बाहर तो अब्बे-तब्बे, घर में चूहे पक्के।

घर में आते हो तो नाक पर मक्खी नहीं बैठने देते हो। अब बाहर जब कदम-कदम पर तकाजे होंगे तो क्या हाल होगा ? इनमें से कौन काम करेगा ? हमारा क्या, एक आदमी की नहीं, सौ आदमियों की दावत करो; एक दिन नहीं, रोज दावत करो। कुछ हमको अपनी गिरह से तो खर्च करना नहीं है; तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। जब तुम्हारे गले से कोई बात ही नहीं उतरती तो तुमको समझाना बेकार है। मैं कहती हूँ कि सब आदमी अपना आगा-पीछा सोच लेते हैं। तुम्हारी ही तरह सब हो जायँ तो भला दुनिया का काम ही कैसे चले।

हाँ, वही हैं वही, जो मैं कह रही थी। आखिर वही हुआ। कम्बख्त इतवार का दिन तो और मेरी मुसीबत का दिन हो जाता है। जानते हो, कुछ समझे भी, बजाज का आदमी है। अभी गये महीने तुमने अपने दो सूटों का कपड़ा

---

१ लज्जा।

खरीदा था ! पचीस रुपये का बिल उसका आया था। अब वह कई रोज से तकाजे को आ रहा है। अब बताओ, अगर आज वही दावत के दस रुपये बचते तो उसी को देकर निजात[1] कर ली जाती। पचीस में दस ही उसको पहुँच जाते तो उसको तसकीन[2] कुछ-न-कुछ हो जाती और फिर कुछ कपड़ा और भी खरीद सकते थे। अब यही देखो कि आज पूरे छः महीने हुए, जब चार दुपट्टों का कपड़ा खरीद किया था। रफ्ता-रफ्ता[3] इस्तेमाल से खराब होते गये। चलिये दर्वाजा बन्द। अगर आज तुम हिसाब लगाओ तो हर हफ्ते दावत में कुछ न सही तो पाँच रुपए जरूर ही सर्फ होते हैं। महीने के बीस हुए। कितने काम निकल सकते थे और कितने आदमियों को इस बीस रुपये में समझाया जा सकता था ? फिर दावत कभी हो गई महीने दूसरे महीने। यह नहीं कि अब रोज वही सिलसिला कायम है। कहाँ के ऐसे बड़े रईस हो ? इसमें तो फकीर हो जाओगे ! अपने तन-पेट के लिए कुछ नहीं कर सकते। जो है, वह तुम्हारे दोस्तों की दोजक[4] में समा जाता है। आखिर यह भी कोई करीना है ? यह तो बिलकुल फूहड़पने की बातें हैं। गौर तो करो, इतनी दूर पर खाला[5] जान मौजूद हैं, और यह नहीं हो सकता कि किसी दिन उनके यहाँ जाकर हो आवें,

---

१ छुटकारा। २ ढारस। ३ धीरे-धीरे। ४ नरक के समान पेट। ५ मौसी।

महेज इसलिए कि चार-छः आने किराये के सर्फ होंगे। तुम अपना पैसा दोस्तों की दावत में उड़ाते रहो—खर्च करते रहो। कहाँ से इतना बचे कि मैं अपने किराये में चार छः आने सर्फ करूँ। न मालूम कितनी मर्तबा उन्होंने बुला भेजा, मगर मैं बन्दी महेज इसीलिए न जा सकी। वह भला क्या कहती होंगी ? अब यह नौबत पहुँच गई है कि अपने अजीज भी छूटते जाते हैं। तो मैं तो इस तरह दाँतों से पैसा पकड़ती हूँ और तुम हो कि एक जम्मेगफीर[1] की रोजाना दावत में दस-पाँच रुपये खर्च कर देते हो। जो मैं भी इसी तरह करने लगूँ तो क्या हो ! आखिर मेरी भी दो-चार जाननेवाली सहेलियाँ इसी शहर में मौजूद हैं। मैं कभी उनको नहीं पूछ सकती, महेज इसलिए कि दो-चार रुपये खर्च होंगे ! आखिर मेरे भी जी है। नजमा मेरी कितनी गहरी सहेली है। उसके बच्चे की घोड़ चढ़ाई[2] थी और मैं दो रुपये की मिठाई उसको न भेज सकी। आसिया की भी शादी इसी महल्ले में हुई है। पहले-पहल वह सुसराल आई थी, मैं एक रोज के लिए भी उसको अपने घर न बुला सकी। और तो और, खालाजान की छोटी लड़की सुल्ताना को पूरी बरसात गुजर गई और एक रोज भी झूला झूलने के लिए मदऊ[3] न कर सकी। मैं तो इस तरह बचाती हूँ और

---

१ बहुत बड़ी भीड़। २ घुड़चढ़ी की रस्म। ३ निमंत्रित।

तुम हो कि बिला समझे-बूझे, बगैर घर का हाल जाने हुए जब चाहा अपने निकम्मे दोस्तों की दावत कर बैठे।

हाँ, हाँ, मैं कैसा अपना जी मारती हूँ, दुनिया की चीजें दरवाजे पर बिकने आती हैं, लेकिन मैं भूलकर भी कभी एक पैसे की चीज नहीं खरीदती। तो क्या मेरे दिल नहीं है, मैं आदमी नहीं हूँ ? मेरे हाथ में तो सब रहता है, अगर चाहूँ तो सबका सब खर्च कर दूँ; मगर मैं देखती हूँ कि यह घर बिगाड़नेवाली बातें हैं। चुप हो जाती हूँ। अगर मैं भी तुम्हारी ही तरह से हो जाऊँ तो बस चलिये फुर्सत हो जावे। दरवाजे पर लैस, बेल, फीता कैसे अच्छे-अच्छे बिकने आये। देखकर जी ललचा गया। हजार जरूरत थी, हजार तबियत चाही, मगर न लिया, महेज[1] इसलिए कि आज अगर मैं दो-तीन रुपये का खरीद लेती तो माना कि कोई कहनेवाला नहीं था, मेरे पास रुपये भी थे, मगर फिर यह सोची कि अगर मैं ये चीजें न लूँ तो क्या हर्ज है, यही बच रहेगा तो फिर काम आवेगा। मगर तुम्हारा यह हाल है कि तुम एक घंटे में दस रुपये दोस्तों की दावत में सर्फ कर देते हो और कोई परवाह नहीं करते कि इसके बाद क्या होगा। अगर इसी तरह तुम दावत करते रहे तो महीने भर फाका होगा और फिर कर्जख्वाहों[2] से जान छुड़ाना मुशकिल हो जायगा।

---

१ केवल। २ कर्ज देनेवालों।

आई० सी० एस० होने पर

ऐ मैं कहती हूँ कि तुम आई० सी० एस० क्या हो गये, जैसे खुदा हो गये हो ! तोबह, तोबह, नौज-बिल्लाह, खुदा तो फिर भी अपने बन्दों की सुन लेता है, मगर तुम तो मुँह से बोलना भी अपनी कसरे[1]-शान समझते हो। बात-बात में त्योरियाँ चढ़ी हुई हैं, कदम-कदम पर नाक-भौं सिकोड़ते हो। जरा सी मुँह से कोई बात कहने चलो, आप हुश-हुश करने लगे। मैं जानती थी कि आई० सी० एस० होने के बाद आदमी और संजीदा[2] हो जाता है, मगर आप तो और ज्यादा सँवर गये हैं। ऊई, मैं क्या जानती थी कि आप आई० सी० एस० हो जाने के बाद जमीन पर पाँव भी न रक्खेंगे ! क्या ऐसे ही सब आई० सी० एस० होते हैं ? और फिर जो कुछ कहो तो आग-बबूला ! या मेरे अल्लाह, मैं कहती हूँ कि आखिर फिर किससे कहने जाऊँ, किससे पूछने जाऊँ ! घर के मुताल्लिक[3]

---

१ शान का घटना। २ गंभीर। ३ संबंध में।

एक-दो बातें हैं। अरे एक तरफ घर के खर्च व एखराजात[1] के मुताल्लिक, दूसरी तरफ बच्चों की तालीम[2] व तरबीयत[3] के मुताल्लिक। अजीज व अकारिब में शादी-ब्याह के मसले के मुताल्लिक हजारों बातें हैं तो हैं, मगर आप कहाँ सुनते हैं। आप ठहरे आई० सी० एस०! लेकिन क्या आई० सी० एस० होने के बाद आदमी में आदमीयत भी काफी नहीं रहती? कम-अज-कम[4] मुझे तो ऐसा ही मालूम होता है। घर में दाखिल होते हो तो माबूद[5] बन जाते हो, यही चाहते हो कि कोई शख्स जबान न खोले, कोई तुम्हारे सामने मुँह से न बोले। बस, तुम सबको हुक्म देते रहो। सुनते हो, इस तरह काम नहीं चलेगा! अगर तुम आई० सी० एस० हो तो मैं भी कुछ हूँ। तुम्हारी तरह आई० सी० एस० नहीं, मगर इन्सान हूँ। भला अपने घर के मामलात[6] में कुछ कहना-सुनना कोई बुरी बात है, या आई० सी० एस० का कोई यह उसूल है? आपकी निगाह में अगरचेह[7] कुछ वकत[8] नहीं, लेकिन एक आदमी हूँ, इतना तो समझो। और नहीं तो अपनी रैयत[9] ही समझ कर सही, निगाह का काँटा ही समझकर सही, कुछ बोला तो करो। कुछ पूछती हूँ तो मशविरा[10] त दिया करो। मैं तो इसी फिक्र में घुली जाती हूँ

---

१ खर्च का बचत। २ शिक्षा। ३ पालन-पोषण। ४ कम से कम। ५ भगवान्। ६ मामलों। ७ यद्यपि। ८ इज्जत। ९ प्रजा। १० सलाह।

कि आज घर के मुताल्लिक यह काम है, कल वह काम है, और आप हैं कि बिलकुल आई० सी० एस० ! आपके नौकर-चाकर हैं कि वह भी लाट साहब बने हुए हैं; क्योंकि आई० सी० एस० के मुलाजिम हैं; किसी धुनिये-जुलाहे के मुलाजिम नहीं हैं। फिर मुझसे दर्याफ्त करते हो कि क्या मामला है ? क्यों, आप तो आई० सी० एस० हैं; हर बात का भूलना आपके बायें हाथ का काम है; क्योंकि आप आई० सी० एस० हैं। अगर आपको कोई बात याद रह जाय तो फिर आप आई० सी० एस० काहे के ! गोया आई० सी० एस० होने की एक पहचान यह भी है कि अपने-पराये को एक ही नजर में भूल जाइए। मैं याद क्या दिलाऊँ। कोई एक बात हो तो आपको याद दिलाऊँ। आपकी यह तो आदत हो गई है कि जो बात कही जाय, आप कह देते हैं कि 'सारी, फारगेट'[1], और मुझे इन बातों से होती है उलझन। 'सारी फारगेट' सुनते-सुनते नाक में दम आ गया। मगर आप क्या करें, आपके आई० सी० एस० होने की यह आदतें हैं। अभी परसों ही मैंने कहा था कि कल फूफी जान के छोटे साहबजादे की रोजह[2]-कुशाई है। वहाँ आपको जाना चाहिए था, लेकिन आपको क्लब और क्लब के अहबाब[3] से कहाँ फुर्सत थी ! न जाना था न गये और घर आये तो कह

---

१ दुःख प्रकट कर क्षमा-याचना। २ बच्चों के पहले-पहल रोजा रखने का उत्सव। ३ मित्रों।

दिया कि मैं भूल गया, 'सारी फारगेट'। भला यह भी कोई बात है। उनको तो यह मालूम है कि आप आई० सी० एस० हैं, लेकिन उन्हें यह क्या मालूम कि एक आई० सी० एस० हर एक बात भूल जाता है और सिर्फ अपनी ही बात याद रखता है। इसमें हँसने की कोई बात नहीं है, मैं तो इन बातों पर रोया करती हूँ और सोचती हूँ कि मैं किस मुसीबत में मुब्तिला[1] हूँ। मगर आप 'हुश़' कहकर चुप हो जाते हैं; क्योंकि आई० सी० एस० हैं। आपके कहने के मुताबिक[2] दो-चार रोज़ पहले कह देती हूँ कि मालूम नहीं कि आपका क्या प्रोग्राम[3] हो इस पर भी तो आपका यह आलम है कि बस 'सारी फारगेट—सारी फारगेट' कहकर सारे गुनाहों से निजात[4] मिल गई। इसी मुँह से कभी लाहौल-विलाक़ूवत[5] पढ़ लिया करो। मगर आई० सी० एस० जो हो, तुम्हें लाहौल-विलाक़ूवत से क्या मतलब! सुबह हुई तो, शाम हुई तो, एक-एक बात के लिए मुँह खोलकर रह जाती हूँ। कहूँ तो क्या कहूँ, भई किससे कहूँ, तुम्हें सुनने की फ़ुर्सत कहाँ! घर में दाख़िल होते हो तो यह कहते हो कि 'उफ्फोह, परेशान हो गया! आज सैकड़ों आदमियों से मुलाकात करनी पड़ी। सब एक ही दिन आ गये।' अब उस

---

१ फँसा हुआ। २ अनुसार। ३ कार्यक्रम। ४ छुट्टी। ५ किसी अनुचित घटना या आचरण पर कहा जानेवाला शब्द।

वक्त किसकी मजाल है कि जबान हिला सके। कपड़े उतारे, सीधे गुसलखाने[1] चले गये। गुसलखाने से निकले, कपड़े तब्दील[2] किये। खानसामा ने आये हुए कार्ड पेश कर दिये। मोटर निकलवाई गई और आप बैठकर क्लब रवाना हो गये। अगर क्लब न जाइए तो दीन व दुनिया में सुर्खरूई[3] न हो। और जो कहो क्लब से जल्दी टेनिस खेलकर वापस आ जाओ तो वह भी नहीं होता। ब्रिज-पार्टी[4] में न शरीक होने से शर्मिन्दगी होगी ; घर का कोई जरूरी काम पड़ा रहे तो पड़ा रहे; क्योंकि आई० सी० एस० ठहरे। गरज कि वहाँ से दस बजे, कभी ग्यारह बजे, रात को घर वापस हुए। अब आप ही बताइए, उस वक्त तक कौन जागता रहे कि आप किसी से बात करेंगे; क्योंकि आप आई० सी० एस० हैं। लेकिन इस पर भी मैं नसीबों-जली[5] जागती रहती हूँ और अपनी किस्मत पर रोती रहती हूँ। फिर वह वक्त भी आप ऐसे आई० सी० एसों के पलँग पर जाने का वक्त होता है; क्योंकि अगर उस वक्त आप सो न जायँ तो तबियत खराब हो जाय। और आप अगर किसी से कोई बात पूछ लें तो आपकी हेठी हो जाय। सुबह नव बजे पलँग से उठते ही चाय मिलनी चाहिए और जब तक गुसलखाने न जायँ, उस वक्त तक अखबार पढ़ते रहें, क्योंकि दुनिया की हालत

---

१ स्नानगृह। २ बदले। ३ प्रशंसा। ४ ताश के एक अँगरेजी खेल को खेलनेवाले दल में। ५ अभागिन।

का मालूम होना घर की हालत के जानने से ज्यादा जरूरी होता है; क्योंकि आप आई० सी० एस० जो हैं ! और अखबार पढ़ते वक्त भी कोई आपसे बात नहीं कर सकता। गुसलखाने से लौटे, ड्राइंगरूम में कपड़े तबदील करने चले गये। शेव[1] करना, कपड़े बदलना वगैरह काम रोज जरूरी होते हैं। और सुबह का वक्त होता ही कितना है? चलिये ब्रेक-फास्ट[2] किया और आफिस चले गये। मैं फिर अपना मुँह लेकर रह गई ! अब आप ही बताइये, यह तो आपका प्रोग्राम है। अब यही हो सकता है कि मैं भी आपके पीछे-पीछे दौड़ती रहूँ, तो शायद कहीं कोई मौका मयस्सर[3] आ जाय कि आपसे दो-चार बातें कर सकूँ। इस तरह हफ्ते के छः रोज गुजर जाते हैं। अब रह गया इतवार, तो उस दिन आपको दोस्तों से निजात[4] नहीं मिलती। मेरी जान तो बड़े गजब में पड़ गई है। अगर कहूँ कि किसी रोज क्लब न जाओ, तो यह भी नहीं होता। नमाजें छूट सकती हैं, रोजे कजा[5] हो सकते हैं, मगर क्लब नहीं छूट सकता; क्योंकि यहाँ तो एटीकेट[6] और फैशन का सवाल आ जाता है और एक आई० सी० एस० के फैशन के लिए यह जरूरी है कि वह इन बातों को दाखिल[7]-मजहब समझे। आप खुद ही

---

१ दाढ़ी बनाना। २ ब्रेकफास्ट (भोजन)। ३ मिल जाय। ४ छुट्टी। ५ व्रत या उपवास छूट सकते हैं। ६ शिष्टाचार। ७ मजहब में दाखिल।

सोचिए कि मैं इसमें क्या गलत कह रही हूँ। सरकारी काम से तो मजबूरी[1] है, वह तो करना ही होता है; लेकिन उसके अलावा भी तो आपके प्रोग्राम में घर की कोई गुंजाइश नहीं होती ! कम्बख्त नौकर-चाकर भी जगह से हिल नहीं सकते; क्योंकि हर वक्त उन्हें ख्याल लगा रहता है कि कहीं साहब का कोई टेलीफून न आ जाय। बावर्ची खाना पकाने में मसरूफ[2] रहता है। खानसामा को भी आपके सामान की दुरुस्ती से फुर्सत नहीं मिलती। शाम के कपड़े ठीक हो चुके तो सुबह के कपड़े ठीक करना। डिनर-सूट निकालना, क्लब जाने का जोड़ा तैयार करना, जूते की पालिश करना, क्रीम की शीशियाँ लाना, शेविंग[3] का सामान दुरुस्त रखना, काबिल-मरम्मत चीजों को मरम्मत के लिए देना। गरज० कि हर शख्स जैसे आपके प्रोग्राम को मुकम्मल[4] करने के लिए आप ही के नाम लिख दिया गया है ! आज कै रोज से सोच रही हूँ कि कपड़ेवाले को बुलवाऊँ। मगर कौन उसे बुलावे। तुम ठहरे आई० सी० एस० और आपके नौकर आपसे ज्यादा फैशनपरस्त। माना कि तुम आई० सी० एस० हो, तुम्हें यह जेब[5] नहीं देता कि गल्ले की खरीदारी के मुताल्लिक कोई मशविरा दो, अच्छा भई न सही, मगर क्या अजीजो[6]-अकारिब के मामले में भी खानसामा से मशविरा लिया जाय कि नन्हे

---

१ लाचारी। २ लगा रहता है। ३ हजामत बनाने का। ४ पूरा। ५ शोभा। ६ नातेदार।

मियाँ के अब्बा से यह पूछो कि फूफी जान के यहाँ मुझे जाना है, कब जाऊँ? अगर मैं भी घर को इसी तरह छोड़ देती तो सारी कद्र-व-आफियत[1] मालूम होती! सारा आई० सी० एस० पन निकल जाता। पूरा घर आपके खान-सामा-बैरों का घर नजर आता है। एक फाजिल[2] आदमी रक्खा, उसको भी आपने इधर-उधर चिट्ठियाँ ले जाने-आने पर लगा लिया। रह गई आया, वह नन्हे मियाँ को खिलाये या घर का काम करे? एक बफातन है, वह कम्बख्त दो कदम चलने में हजारों नखरे करती है। ईद आई और गुजर गई, लेकिन आपको डिनर और पार्टियों से फ़ुर्सत न मिली। और आपको तो बड़े दिन और गुड-फ़्राइडे की खबर होती है। आफाक मियाँ की सालगिरह के सिलसिले में आपकी दावत थी, मगर आप क्यों जाते। आपको एट-होम में जाना था। हिन्दुस्तानी दावत से एक आई० सी० एस० को क्या काम! उफ्फोह! मेरा तो जी घबरा गया है। मुझे तो कोफ्त हो गई है। दिन-रात यही सोचा करती हूँ कि कैसे काम चलेगा! घर की सारी बातें कहाँ तक बताई जायँ, और आपको इन बातों से दिलचस्पी ही क्या? आप तो आई० सी० एस० हैं। मैं पूछती हूँ कि जब तुम एक घर के इंति-जामात[3] से अलग-अलग रहते हो तो फिर एक शहर का

---

१ खैरियत। २ अधिक। ३ इंतिजाम का बहुवचन।

इन्तिजाम कैसे करते हो ? यही नतीजा होगा कि दूसरों के सहारे काम चलता होगा, जिसके मातहत मुलाजिम ने जो कह दिया, बस उसे मान लिया, तो फिर जाहिर है कि घर के मामलात को कौन तय करे ? मैं औरतजात, और वह भी आपके नजदीक हिन्दुस्तानी औरत कदामत[1]-पसन्द घराने की आपकी नजरों में मेरी हैसियत ही क्या, और फिर परदे में बैठनेवाली थोड़ा बहुत आजाद सही, मगर इतनी आजाद तो नहीं हूँ कि खुद बजाज को बुलाऊँ, खुद दरजी को आवाज दे लूँ, घर की जरूरियात का सामान बाजार से जाकर खरीद लाऊँ। पास-पड़ोसवालों का कोई सवाल ही नहीं, जब कि अपने अजीज–अकारिब की तकरीबात[2] तक छूट गई हैं। क्योंकि तुम हो आई० सी० एस० तुम्हारे नजदीक तो ये तमाम बातें लगो[3] और पोच हैं। मगर मैं तो अब तक इसी फिजा[4] में रही हूँ। रोजे न रक्खूँ, नमाज न पढ़ूँ, ईद न करूँ, सिवइयाँ न मँगाऊँ, कुर्बानी न करूँ, मुझसे तो यह नहीं हो सकता। तुम हँसते हो, मेरे बदन में तो आग लगी हुई है। खुदा जाने किसी आई० सी० एस० के साथ औरतें किस तरह जिन्दगी बसर करती हैं ! या तो वह औरत भी आई० सी० एस० हो जाय कि आपको तुरकी-ब-तुरकी

---

१ पुराणपंथी या सनातनी। २ न्योता-दावत-भोज। ३ तुच्छ। ४ वातावरण।

जवाब मिले, और या फिर वह अपनी किस्मत को मेरी तरह रोती रहे। अरे यह रोना नहीं तो क्या हँसना है? तुम्हारे नजदीक यह सब ढोंग है, तमाशा है, लेकिन कभी यह तो गौर किया होता इन्हीं कि बातों से वास्ता पड़ता है कि नहीं। फिर क्या अजीजदारी कायम रखना कोई बेउसूली है? अपने-पराये के मुताल्लिक खबरों का रखना कोई गुनाह है? अच्छा खैर, जो आपकी मर्जी में आवे वह कीजिए—मैं कसम खाती हूँ कि अब कभी कोई बात न करूँगी—चाहे अजीज़दारियाँ[1] बाकी रहें या खतम हो जायँ। जब आप किसी को न पूछेंगे तो आपको कौन पूछेगा? बस खाली आई० सी० एस० बने रहिए। इसी से निजात[2] मिल जायगी। आपको फुर्सत नहीं तो मुझे कब फुर्सत है। मैं भी आज अपने अब्बा जान के यहाँ दो-चार रोज के लिए जाती हूँ। अब तुम जानो और तुम्हारा काम जाने।

———————

१ नातेदारियाँ। २ मोक्ष।

शेर कहने पर

उफफोह ! मैं कहती हूँ कि तुमको शायरी का खब्त[1] हो गया है। ऐसा मालूम होता है कि जैसे गालिब[2] की रूह[3] तुम्हीं में समा गई है। भला यह भी कोई बात है! घर की किसी बात की तुमको परवाह नहीं होती। मैं औरत-जात आखिर क्या करूँ ? जब देखो, बैठे मुँह बना रहे हैं और मालूम नहीं, किस धुन में रहते हो ! खुदा की मार तुम्हारे शेर कहने पर ! जरा आईने में अपनी सूरत तो देखो। मालूम होता है, जैसे कोई पागल हो। इन्सानी शक्ल ही नहीं मालूम होती है। मैं चाहती हूँ कि थोड़ी देर तुमसे घर के हालात पर गुफ्तगू[4] करूँ, मगर तुम हो कि हर वक्त बस शेर कहने में मस्त हो। अभी कल ही की बात है कि रात को खाला जान हज करने जा रही हैं। मैंने सोचा था कि तुमसे मशविरा[5] करने के बाद जाकर उन्हें देख आऊँ। तुम अपने शेर व शायरी के चक्कर में थे। सुबह के गये दस बजे रात

---

१ पागलपन । २ एक प्रसिद्ध उर्दू के कवि। ३ आत्मा। ४ बातचीत। ५ सलाह।

को घर में दाखिल हुए, और वह भी इस तरह कि गुन-गुनाते हुए। आते ही लैम्प जला कर बैठ गये और फिर धुन में हो गये। एक-दो मर्तबा मैंने कहा भी कि तुमसे कुछ बातें कहनी हैं। तुमने हाँ हाँ करके टाल दिया और यह कह-कर ऊपर से बरहमी[1] का भी इजहार कर दिया कि कम्बख्त जाहिलों[2] से वास्ता पड़ा है, जो शेर भी कहने नहीं देते तो एक तुम पढ़े-लिखे हो और सारी दुनिया जाहिल, क्योंकि तुम्हें शेर कहना आता है और दूसरों को शेर कहना नहीं आता। हर वक्त शेर! मेरा तो नाक में दम आ गया है। कहाँ चली जाऊँ कि फिर इस घर में न आऊँ! बरसें गुजर गईं, मगर कभी सीधे मुँह बात नहीं करते, और जब कहो तो कहते हैं कि मैं शेर कह रहा हूँ। क्या शायरी इसी को कहते हैं कि इन्सान सारी दुनिया से बेताल्लुक[3] हो जाय? मैं कहती हूँ कि ऐसी शायरी किस काम की! और शायरी भी क्या होगी, वही गुल-व-बुलबुल के पुराने किस्से—वही चोंचले—वही पुरानी बातें। कोई नई बात हो तो भला एक बात थी। मैं पूछती हूँ कि आखिर तुम्हारी शायरी से क्या फायदा? एक आदमी कोई बात कहता है, कोई काम करता है तो उसके मुताल्लिक यह सोच लेता है कि उसका कोई फायदा है। तुम्हारी शायरी

---

१ विरोध। २ मूर्ख। ३ नाता तोड़ना।

से क्या फायदा ? न दीन की न दुनिया की, झूठी बातें, गलत मामलात। और फिर यह कहते हो कि यह इसतेआरात[1] हैं—यह तलमीहात[2] हैं। मैं तुम्हारी इन बातों से आजिज आ गई। और फिर कम्बख्त एक दिन का किस्सा हो तो मैं भी चुप रहूँ। तुम्हारे रोज ही कहीं-न-कहीं मुशायरे[3] होते रहते हैं और तुम्हें वहाँ जाना भी जरूरी, वरना हुक्का-पानी बन्द हो जावेगा। ऊई अल्लाह, मैं तो किस अजाब में फँस गई हूँ! फिर मुझसे यह भी कहते हो कि न मेरे शेर सुनती हो और न तारीफ करती हो। आखिर कोई कहाँ तक तुम्हारे शेर सुना करे। और अगर बैठी शेर ही सुना करूँ तो फिर घर के और काम कैसे चलें ? घर का कोई और इंतिजाम कर दो, मैं हर वक्त तुम्हारे शेर ही सुना करूँ— मुझे क्या करना है। अरे मैं तो कहती हूँ कि क्यों हर वक्त अपना दिमाग खराब किया करते हो। ऐसे काम से क्या फायदा, जिससे न दुनिया बने, न दीन। अगर तुमने एक निहायत उम्दा गजल दो-तीन घंटे की मेहनत के बाद कह भी ली तो उसका क्या हासिल! किसी ने सुना, मुँह बनाया, और किसी ने तारीफ कर दी। तो क्या इस तारीफ से पेट भर जायगा ? वह जमाना गया, जब एक-एक शेर पर मोती निछावर किये जाते थे और शायरों के दामन को

---

१ तारीफें या उपमा। २ किस्से या प्रेम-गाथाएँ। ३ कवि-सम्मेलन।

सीम[1]-व- जर से भर दिया जाता था। आज कोई है ऐसा जो दस-बीस शेर के दो-चार रुपये ही दे दे। ये मोटी-मोटी कापियाँ तुमने शेरों से भर रक्खी हैं। बताओ, कै हजार रुपये तुमको मिल गये ? मुशायरा-मुशायरा करते हो, मुशायरा गया चूल्हे-भाड़ में ! अपने पास से ताँगे का किराया दो, रात भर परेशान रहो, अपनी पूरी नींद हराम करो तो जाकर मुशायरे में बैठो, और वह भी इस उम्मीद पर कि कोई शेर सुनकर तारीफ करेगा। तुम्हारी तो अक्ल मारी गई है। मैंने मुशायरों को देखा है। मेरे चचा जान भी शायर थे। वह भी अपने यहाँ मुशायरा करते थे और मुशायरों में बड़े-बड़े जय्यद[2] शायर आते थे। मगर क्या, मुझे तो कहते हुए शर्म आती है कि मुशायरों में शायरों की जो दुर्गति बनती थी, खुदा न करे, किसी शरीफ आदमी को ऐसी बातों से पाला पड़े ! कम्बख्त सुनना तो दरकिनार, शायरों की नकलें किया करते थे। कोई कहता था, अजी हजरत, ऐसे शेर कहना आप ही का काम और आप ही की उस्तादी है। और खुदा जाने क्या-क्या कहा जाता है ! भला यह भी कोई बात है कि सरे-महफिल किसी की ऐसी बेइज्जती हो और वह फिर मुशायरे में शरीक हो ! और फिर वह कम्बख्त शेर भी कुछ हों ! कहीं माशूक ने छुरा

---

१ धन-दौलत। २ भारी या प्रसिद्ध।

झोंक दी और आप बैठे तड़प रहे हैं और उससे कहते हैं कि जरा मेरे तड़पने का तमाशा देखते जाओ, और वह है कि मुँह फेर के भी नहीं देखता। बस, इसी शेर पर झूम रहे हैं। मैं तो यह जानती हूँ कि जिसका दिमाग खराब हो, वह शायरी करे। एक तुम्हीं हो कि अब किसी काम के नहीं रहे। और तो और, दफ्तर जाना भी याद नहीं रहता। तो क्या इसी तरह नौकरी रहेगी ? और अगर तुम हर वक्त शेर-व-शायरी में ही पड़े रहोगे तो काम क्या करोगे ? नतीजा यह होगा कि तुम्हें तुम्हारी जगह से अलग कर दिया जायगा और कोई दूसरा आदमी रख लिया जायगा। बस, तुम शेर ही कहते रहोगे। कोई एक-दो मुशायरे नहीं होते, बल्कि महीने में सैकड़ों मुशायरे होते हैं, और हर मुशायरे में तुम्हारा जाना भी फर्ज है, वर्ना काफिर न हो जाओ। तोबह-तोबह ! कैसी घिनौनी बातें यह कम्बख्त शेर में कहते हैं ! अरे इन कम्बख्तों का कोई ईमान नहीं होता, इनका कोई खुदा नहीं होता। नमाज़-रोजा तो उनके वास्ते माफ है। बताओ ना तुमने अपनी उमर में कितनी जुमे[1] की नमाजें पढ़ी हैं, कितनी मर्तबा रोजा रक्खा है ? इसी से तो कहती हूँ कि खुदा ने खुद कहा है कि शायर झूठे और लफ्फाज[2] होते हैं। अब यही देखो ना, वह क्या शेर था, जिसका

---

१ शुक्रवार। २ बातें बनानेवाले।

मतलब यह था कि सुबह से शराब पीने लगे तो शाम हो गई, फिर भी पेट न भरा और साकी की तरफ जाम के लिए देखते ही रहे। खुदा की मार ऐसी शायरी पर, जिसमें हराम व हलाल का भी ख्याल नहीं रहता। क्या तुम जानते नहीं हो कि शराब पीना हराम है और फिर यह कहना कि शाम तक पीते रहे, नियत न भरी! शायरी में हजारों बातें बुराई की हैं। हाँ, अल्लाह रसूल[1] की तारीफ की होती, उनके अहकामात[2] के मुताल्लिक कोई शेर कहा होता तो एक बात थी; या अपने वतन[3] की हालत के मुताल्लिक कोई मर्सिया लिखा होता तो एक बात थी। दिन-रात माशूक[4] के जोर-व-सितम[5] में गिरफ्तार हैं, न आसमान में पनाह मिलती है न जमीन में, मरने जाते हैं तो मरना भी नहीं आता, डूबने जाते हैं तो दरिया का पानी खुश्क हो जाता है—यह तो कम्बख्ती की बात है, बदनसीबी है। खुद बियाबान में हैं और घर में घास उगी तो गोया[6] बहार[7] आ गई है! ऐ सुबहान अल्लाह! खुदा न करे कि मैं भी शेर कहने लगूँ और बैठे-बिठाये अपने सिर पर एक मुसीबत बुला लूँ। आप ही की मुसीबत क्या कम है! फिर कहते हो कि शेर कहने से नुकसान क्या है? मैं पूछती हूँ कि फायदा क्या है? किसी

---

१ पैगम्बर या ईश्वर का भेजा हुआ। २ चरित्रों या कार्यों। ३ जन्मभूमि। ४ प्रेमपात्र। ५ अत्याचार। ६ मानो। ७ बसंतऋतु।

बाहर के मुशायरे में जाते हो, अपने काम का हरज करते हो, दफ्तर से रुखसत लेते हो, दो रोज की तनख्वाह कटती है। चन्द रुपये किराये के मिल गये और बस भूके-प्यासे चले जा रहे हैं। अरे भई, कहाँ जा रहे हो ? मुशायरे में जा रहे हैं, और महेज वाह-वाह के लिए। टिकट के दाम मिल गये, चलो बस, दौलत मिल गई। और जो तमाम हर्ज होगा, उसका कौन जिम्मेदार होगा ? वही थोड़ी देर की वाह-वाह ! आग लगे इस शायरी को ! और वाह-वाह को ओढ़ोगे कि बिछाओगे ? और जो तीन रोज की तनख्वाह कट जाती है, उसके मानी[1] क्या होते हैं ? यही कि घर के खर्च में उतनी कमी हो गई; कर्ज का जो सिलसिला बँधता है, वह कभी खतम न होगा; अजीज-व-अकारिब से मिलना छूटा और मुफ्त[2]-खुदा मुसीबत बढ़ी। पिछले इतवार को सोचा था कि भाईजान के यहाँ चली जाऊँगी। जाड़े आ गये हैं, उन्हीं के यहाँ के नौकरों से बच्चों के लिए कपड़े वगैरह मँगा लूँगी; क्योंकि तुम्हें अपनी शेर-व-शायरी ही से फुर्सत नहीं होती, तो तुम बच्चों के कपड़े कब खरीदोगे। यह इरादा किया ही था कि आप देहली के मुशायरे के लिए चले गये। फिर यह ख्याल किया कि अच्छा आप देहली से वापस आ जायँ, तब जाऊँगी। अब देहली से वापस हुए तो नजला-जुकाम, बुखार,

---

१ अर्थ। २ बेकार में।

खाँसी में मुबतिला! चलिए छुट्टी हो गई। एक मुशायरे में क्या गये, और अपने ऊपर मुसीबत ले ली। महीने भर इलाज हुआ, उसमें दस-बीस-पचास रुपये खर्च हो गये, इधर तनख्वाह कटी, घर में तंगी हो गई, खर्च बढ़ गया, आमदनी घट गई। अगर मैं तुमसे कहती, इस सर्दी में मुशायरे में न जाओ, तो तुम मेरी जान को आ जाते। अब देखो, उसका नतीजा यह हुआ कि लड़के बोटियों पर जाड़ा काट रहे हैं। तुम्हें फुर्सत नहीं, मैं जा न सकी, उनके वास्ते कपड़े वगैरह कौन खरीद कर लाता? तुम्हें अपने मुशायरों से काम है। वही तुम्हारा दीन-ईमान बन गया है। मैं तो जानती थी कि मेरी जिन्दगी तुम्हारे घर आकर अजीरन हो जायगी; मगर किसमत की बात कौन टालता? जो होनेवाला था, वह होकर रहा। तुम्हें खुद भी मालूम है और मैं भी जानती हूँ कि एक दिन यह लगी-लगाई नौकरी भी शेर व शायरी की नजर हो जायगी। अब तक नजर हो जाती, वह तो खुदा को मालूम नहीं क्या मंजूर था कि तुम बच गये, वर्ना कसर ही क्या रह गई थी! मैं क्या बताऊँ, मारे शौक के इलाहाबाद के मुशायरे में गये थे ना, और वहाँ दो रोज सर्फ हो गये। मंगल को दफ्तर पहुँचे। फिर दफ्तर की हालत तुम खुद बताते थे कि बड़े साहब तुम पर सख्त बरहम[1] थे और

---

१ विरुद्ध या नाराज।

मनसूम ने रिपोर्ट भी लिख दी थी, पत्ता कट जाता। वह तो कहो कि उसके दिल में रहम आ गया, और उसने उस मामले को देखा ही नहीं, वर्ना उसी दिन नौकरी तशरीफ़[1] ले जाती। मैं सचमुच कहती हूँ कि तुम एक दिन पागल हो जाओगे। और मैं तो पागल ही हूँ। पागल न होती तो पागल के साथ क्यों होती। घर को लात मार देती, और चली जाती। मगर नाक तुम्हारी ही तो कटती, मेरा क्या जाता! परसों दरवाजे पर दर्ज़ी आकर चला गया। उसको कपड़े कौन देता! तुम अपने शेर कहने में मस्त थे। उस वक्त किसी से बोलना तुम्हारे लिए जुर्म था। और घर में दो-चार आदमी नहीं। मैं पर्दे की बू-बू ठहरी। चलो फुर्सत हुई। दर्ज़ी बेचारा पुकार-पुकार वापस गया, और मुन्ने की कमीज न बन सकी। यहाँ देखिए कि आज दो रोज के बाद आप वापस हुए हैं; घर की जरूरियात का कोई ख्याल नहीं। और वापस भी हुए तो किस तरह—'बयक बीनी व दो गोश'। जो सामान मुशायरे में लेकर गये थे, उसमें से एक भी वापस नहीं आया। कहते हो कि रेल से चोरी हो गया। तो फिर अब क्या होगा? क्या चोर ही दे जायगा या रेलवाले भेज देंगे, या मुशायरा करनेवाले आपका यह सब नुकसान पूरा कर देंगे? और फिर इतना सामान तोशक, लिहाफ, कम्बल,

---

१ चली जाती।

रजाई, चादर, तकिया, तीन जोड़े कपड़े, कोई मुँह का निवाला है, जिसको एक रोज में अब बनवा लेंगे? कहीं बरसों में ऐसा सामान तैयार होता है। अरे एक बात हो तो मैं कहूँ, किस-किस बात को कहूँ और किस पर मातम करूँ। बस शेर कहा करो, यह सब पूरा हो जायगा। मैं जो कुछ कहती हूँ तो कहते हो पागल हो। हाँ, मैं पागल हूँ, हालाँकि पागल आप हैं, जो अच्छी मानें न बुरी जानें। अभी पिछले साल ही तो है, डाक्टरों ने आपको मशविरा दिया था कि दिमाग पर बहुत जोर देनेवाला काम कुछ दिनों तक न करना चाहिए। मगर आप हैं कि हर वक्त शेर कहने के गुने में पड़े रहते हैं। जो कहीं कुछ खुदा-न-ख्वास्ता फिर हो गया तो लेने के देने पड़ जायँगे। खुद तो बीमार ही होंगे, दूसरों को भी अधमुआ कर देंगे। मैं तो दिन-रात इसी कोफ्त में आधी हो गई। अब तो मैं कुछ रोज के लिए अम्मी के पास चली जाऊँगी, तुम्हारा जो जी चाहे, करो।

———

एक दियासलाई की डिबिया न लाने पर

मुई एक दियासलाई की डिबिया कौन ऐसी भारी-भरकम चीज थी, जो न लाई गई। किसी दूकान से खरीद कर जेब में डाल लेते तो क्या कोई हर्ज हो जाता, या इज्जत घट जाती, फैशन बिगड़ जाता? आखिर घर ही का तो काम था। किसी दूसरे के लिए तो खरीदना न था। मगर क्यों याद होता, वह तो मैंने कहा था। अगर कोई होती-सोती कहती तो डिबिया क्या, बड़ा-सा सन्दूक उठा लाते। ऐसी याद भी किस काम की! सुबह से तकाजा कर रही थी, चलते-चलते याद दिला दिया, रूमाल में गिरह बाँध दी, मगर गजब खुदा का, उस पर भी तुमको याद न रहा! भला मैं कहती हूँ कि तुम दफ्तर में काम क्या करते होगे। इसी तरह सब कुछ भूल जाते होगे। इसी से तो महीने में दो-चार दिन कट जाते हैं, और यहाँ कहते हो कि चन्दा दे दिया। जब तुमसे दियासलाई की एक डिबिया न लाई गई और

उसका लाना न याद रहा, तो इसी तरह एक दिन तुम मुझको भी भूल जाओगे, अल्लाह रसूल को भूल जाओगे। मैं कहती हूँ कि आखिर तुम्हारी यह नेस्ती[1] तुमसे कब छूटेगी और तुम कब घर की तरफ तवज्जुह[2] करोगे? जब मैं यह देखती हूँ कि तुमको एक दियासलाई की डिबिया भी लाने की याद नहीं रहती तो भला और चीजों का क्या जिक्र है। कोई सुने तो क्या कहे कि उनके यहाँ एक दियासलाई की डिबिया भी नहीं रहती। नाम बड़ा और दर्शन थोड़ा। तुमको क्या मालूम कि दियासलाई की एक डिबिया न होने से क्या-क्या दिक्कतें उठाना पड़ती हैं। आग जलाने को मोहताज बैठी हूँ। जब शुबरातन कम्बख्त आये और बाहर से आग लावे तो जाकर बावर्चीखाना गरम हो, वर्ना यों ही बैठी रहूँ। शाम हो गई और घर में चिराग नहीं जला और जलता कैसे, जब तुम दियासलाई की डिबिया लाना भूल जाओगे तो मैं क्या आखिर हाथ-मुँह को दियासलाई की डिबिया बनाऊँगी! घर भर में अँधेरा पड़ा रहेगा। मगर तुम्हारा क्या बिगड़ता है, तुमको उससे क्या मतलब? अगर अँधेरे-उजाले का खयाल होता तो एक डिबिया दियासलाई लेते आते। ऊंई, ऐसी आदत भी क्या, जो चीज है, भूल गये, जो काम है, याद नहीं रहा। एक, दो, तीन हों तो याद दिलाऊँ;

---

१ मनहूसियत। २ ध्यान देना।

किस-किसको गिनाऊँ और किस-किसको झीकूँ। आज तीन रोज हो गये सिर धोये हुए, सिर में डालने का तेल घर में एक बूँद भी नहीं है। मगर किससे और क्या कहती। जब दियासलाई की एक डिबिया का लाना याद नहीं रहा तो भला एक बोतल तेल तो बहुत बड़ी चीज थी। कम्बख्त बालों को देखो तो बिल्कुल खुर्रे हो गये हैं, मगर तेल न नसीब होना था, न हुआ। देखते हो, आसमान पर काली-काली घटाएँ छाई हुई हैं और घर में अँधेरा पड़ा है, घर में दियासलाई की डिबिया नदारद। अगर आज रात को यह घटा बरस पड़ी तो कयामत[1] ही आ जायगी। यह चमक-गरज, खुदा की पनाह, कलेजा दहलाये देती है, और तुमको दियासलाई की डिबिया लाना न याद रहा। पानी बरसे और फिर बरसे, किसी के रोके रुक नहीं सकता। अगर खुदा-न-ख्वास्ता[2] छत टपकने लगी तो कहीं बैठने का भी ठिकाना न होगा, और न अँधेरे में कुछ सुझाई देगा। मगर भला तुमको खयाल क्यों होता, जो एक दियासलाई की डिबिया लेते आते। अरे मैं कहती हूँ कि अगर जी पर रखते तो सब कुछ हो सकता था। एक डिबिया क्या, दस डिबिया आ सकती थीं। मगर वह तो कहो कि हमारे कहने से और हमारी बातों से जिद है। अपना सिगरेट का डिब्बा कभी

---

१ प्रलय। २ दैवयोग से।

न भूलें। अपने पानों की डिबिया कभी न भूले। यहाँ तक कि दफ़्तर से चपरासी भेजकर मँगवाया करते हो। मगर याद न रही तो एक दियासलाई की डिबिया। मैं यह कहती हूँ कि तुमको मेरी बातों से जिद है, वर्ना[1] क्या तुम बाजार से कोई चीज खरीद कर लाते नहीं हो। सैकड़ों मर्तबा दफ्तर की वापसी पर जूते की पालिश की शीशियाँ, बुरुश वगैरह सब खरीद-खरीद कर लाये, मगर न लाई गई तो एक दियासलाई की डिबिया। बड़ी खैरियत हुई जो आज के दिन घर में कोई मेहमान नहीं आया, वर्ना नाक ही कट गई होती। भाभी जान वगैरह आनेवाली थीं। अच्छा हुआ कि वह आज नहीं आईं। अगर वह आ जातीं तो वह भी देखतीं कि इनके घर में एक दियासलाई की डिबिया नहीं है। उफ. किस कदर अँधेरी रात है! जो कहीं जलते-जलते लैम्प बुझ गया तो क्या होगा। रात भर अँधेरे में घुट-घुटकर रहना पड़ेगा। और चाहे इस अँधेरे में कोई घर में भी घुस आवे तो कोई क्या बना लेगा? कौन देखेगा? और देखेगा भी तो क्या करेगा? मेरा तो दम ही निकल जायगा। मगर तुमको मेरे घबराने, परेशान होने की क्या परवाह! तुम तो सराय के मुसाफिर की तरह घर में आते हो, तुमको भले-बुरे की क्या खबर! तुम्हारी बला को क्या गरज कि घर में क्या

---

१ नहीं तो।

होता है। मेरा क्या नुकसान, तुम्हीं को तकलीफ होगी। जब सुबह-ही-सुबह हुक्का गुड़गुड़ाने को न मिलेगा तो पता चलेगा कि दियासलाई की डिबिया न लाने से क्या तकलीफ होती है। और फिर जब सवेरे चाय और नाश्ता[1] माँगोगे तो कोई कहाँ से चाय और नाश्ता बना कर देगा! जब जरूरत नहीं होती है तो घर में एक-दो नहीं, बल्कि दियासलाई की डिबिया मारी-मारी फिरती हैं और जब जरूरत होती है तो तुमको भी जिद हो जाती है। मैं तो यह कहती हूँ कि घर के खर्च के लिए एक डिबिया दियासलाई महीनों काम दे, मगर आग लगे तुम्हारी सिगरटों को! एक डिबिया दियासलाई तो तुम्हीं फूँक देते हो। और इस पर यह हाल कि एक डिबिया दियासलाई की न लाई गई। नौज तुम्हारा जैसा भुलक्कड़ इन्सान कोई दुनिया में हो! रास्ता-गली चलते तो निगोड़ी दियासलाई की डिबिया बिकती हैं; और उस पर भी तुमको खरीदना याद न रहा। मुई एक पैसे की औकात ही क्या है, कुछ सौ दो सौ रुपये तो खर्च नहीं करना था कि जेब में नोटों के गड हैं, चलो भाई, आज नहीं सही, कल सही। एक पैसे की दो डिबियाँ पुकार-पुकारकर लोग फरोख्त[2] करते हैं। मगर नेकी उतरे तुम्हारी याद पर[3]। मैं मानती हूँ कि कल एक दर्जन दियासलाई की डिबियाँ

---

१ जलपान। २ बेचते हैं। ३ याद के ऊपर ताना।

ला दोगे, मगर आज क्या होगा ? इतनी बड़ी पहाड़ सी रात कैसे कटेगी ? फिर सावन-भादों की अँधेरी। जब अल्लाह साथ खैरियत के सुबह करेगा, तब की तब है, अभी तो सहम-सहम के जान निकली जाती है।

बड़ी-बूढ़ियों की कहावत बिलकुल सच है कि इन मरदों के जो जी में आता है, करते हैं। घी का घड़ा ढुलक जाये तो इनकी बला से, कोई डर-डर के जान दे दे तो उनकी जूतियों से ! ये बिल्कुल बे-अंकुस के हाथी होते हैं। सो यह झूठ नहीं है। निगोड़ी एक डिबिया दियासलाई की न लाई गई तो भला मैं और क्या उम्मीद करूँ ! कहा था कि बरसात का जमाना है, कल इतवार का दिन है, कहूँगी कि इकट्ठा दो-चार रुपये की सूखी लकड़ियाँ भरा दूँगी। तो भला दो मन लकड़ियाँ खरीद लाना तो बड़ी बात है, भला काहे को याद रहेगा। सचमुच क्या तुम लोगों ने मुझको दीवाना बना लिया है या पागल समझ लिया है, जो सबके सब परेशान करने पर तुले रहते हो ! घर का छोटे से बड़ा तक जो है वह इसी रंग का ! अल्लाह की पनाह ! भला इस तरह मेरी जिन्दगी ही काहे को होगी, जब घर का करीना यही है। अरे मैं कहती हूँ कि घर-गिरस्ती में क्या यही होता है कि आदमी एक चीज टोले-महल्ले में माँगता फिरे। कैसी शर्म की बात है ? मेरी तो तोबह है, जो आज से मैं बाजार के किसी सौदे के मुताल्लिक कहूँ। वही मसल है कि 'पीच पी, हर नेमत

खाई।' मेरा बस चलता तो मैं मुँह ही पर न लाती. माँगना तो दरकिनार; लेकिन क्या करूँ, कहना ही पड़ता है। मुई नसीबन को अपने ही अलाजार[1] से फुर्सत नहीं होती, भला वह बाजार-हाट क्यों जाने लगी। और वह तो सबसे बढ़कर है। मँगाओ आम, ले आती है इमली। फिर कोई कहाँ तक एरा-फेरी करावे। कम्बख्त घर का नाम भी बदनाम होता है। कोई क्या समझेगा कि नसीबन की बेवकूफी है, सब यही कह देंगे कि बीबी बड़ी बेढब हैं! ए अभी जुमावाले दिन की बात है, एक पैसे की रंग की पुड़िया लेने गई और आधा दिन खत्म कर दिया। फिर भी बन्दी को गुलाबी रंग न मिला। तो कौन मूँड मुँडावे। बाहर बेचारा करीम लूला-लँगड़ा घर से बाजार तक चार-छः बैठक में जाता है। दो पैसे की चीज मँगानी हो तो दो रोज पहले से उनसे कहा जाय या दो आना एक्के का किराया दिया जाय तब कहीं जाकर बाजार से वह चीजें ले आवें। अब यह आफत नहीं तो और क्या है? नतीजा यह होता है कि हिर-फिर तुम्हीं से कहना पड़ता है। तुम्हारा यह हाल कि एक पैसे का एक डिबिया दियासलाई लाना मुहाल[2] है। आखिर मैं पूछती हूँ कि फिर घर का काम कैसे हो? अब मैं भी ऐसे ही पड़ा रहने दूँगी। मेरी जूती से अगर घर में डिबिया दियासलाई की

---

१ लड़के का नाम। २ कठिन।

नहीं है, चाहे चाय न बने—नाश्ता चाहे तैयार हो चाहे न हो। दफ्तर का वक़्त है तो मेरी बला से। मैं कहाँ तक अपनी जान खपाऊँगी। कुछ एक के किये थोड़े ही होता है, सबको फ़िक्र रखनी चाहिए। कल बेचारी हमसाई[1] के भाई से शाम-व-शाम आग की एक चिनगारी मँगाई तो आग जली! भला वह क्या कहती होंगी कि इनके यहाँ मुई आग भी भीख माँगी जाती है। मगर उनको क्या खबर कि हफ्ता भर से मियाँ की जेब में दियासलाई लाने का पैसा पड़ा हुआ है, और वह रोज भूल जाते हैं। और कोई यह एक दिन की बात थोड़े है, यह तो रोज का रोना है। क्या करूँ, बेबस हूँ, वर्ना इस घर में थूकने भी न आती। ख़ुदा की यही मर्ज़ी थी, तकदीर में तो यही लिखा हुआ था, कोई उसको कैसे मिटाता। मा-बाप को क्या खबर थी कि हमारी लाडली ऐसे घर जायेगी, जहाँ एक डिबिया दियासलाई की भी मयस्सर[2] न आवेगी। वह तो जानते होंगे कि हमारी लड़की बड़े आराम से होगी, मगर यहाँ कम्बख्त यह हाल है कि एक-एक चीज का काल, एक-एक बात का रोना। दिन में कोई ऐसी घड़ी नहीं गुजरती, जिसमें मुझे एक-एक काम के लिए चीखना-चिल्लाना न पड़े। उफ, नसीब की बात है। लोग कहते हैं कि दमड़ी का चिराग घर का लाल होता है; मगर मैं कहती हूँ, वह चिराग बगैर दियासलाई बेकार है।

---

१ पड़ोसिन। २ प्राप्त न होगी।

चूहों ने बक्स के तमाम कपड़ों का सत्यानास कर दिया है। कहा था, चूहेदान ला दो। तुमसे वह भी न हुआ। सोचा था कि आज दियासलाई आ जायेगी तो आटे में घोलकर दे दूँगी, चूहे मर जायँगे। तो भला तुम दियासलाई क्यों लाने लगे। देखो, वह क्या गड़बड़ हो रही है? सब काटे फेंके देते हैं, घर को घुड़दौड़ का मैदान बना रक्खा है। अगर कहीं तुम्हारे कोट-पतलून की ख्वारी हो तो तुमको पता चले और होश आवे। मेरे कहने का कोई असर नहीं है। समझते हो कि एक पागल है—चीख रही है, आप ही चुप हो जायगी। तो मुझे क्या करना है, अब मैं कभी मुँह न निकालूँगी, चाहे घर में चूहे लोटें या कूदें। मैं आज ही अब्बाजान को लिखती हूँ, उनका जवाब आया और मैं रवाना हुई। तुम जानो और तुम्हारा काम जाने। मैं काहे को अपने को कोफ्त में घुला-घुलाकर रहूँ। रात तो किसी न किसी तरह गुजर ही जायगी, सुबह तो बंदी एक मिनट के लिए भी न ठहरेगी। बस-बस, आप अपनी बातें रहने दीजिए। खूब देख लिया, खूब समझ लिया। कोई कहाँ तक एक-एक चीज की मोहताजगी[1] उठावे। वही मसल है कि अशर्फियाँ लुटें और कोयलों पर मुहर हो। बाहर तो लोग यह जानते होंगे कि हेड क्लर्क साहब का मकान है, मगर अंदर यह हाल है कि एक डिबिया

---

१ मोहताज होने का भाव, कंगाली।

दियासलाई की भी मौजूद नहीं है। क्या कहते हो ? मैं कोई नादान नहीं हूँ, सब कुछ जानती हूँ—सब कुछ समझती हूँ। मगर फिर भी तबियत से मजबूर[1] हूँ, वर्ना मुझे क्या करना है। मैं तो तुम्हारे ही आराम के लिए परेशान रहती हूँ कि वक्त पर खाना मिले, वक्त पर नाश्ता मिले।

मैं खुदा-न-ख्वास्ता नसीहत[2] क्यों करने लगी, और मेरी नसीहत भला आप क्यों सुनने लगे ! अगर यही होता तो मुई एक डिबिया दियासलाई की क्या हकीकत[3] है। रास्ते में जिस गली से गुजर[4] जाओ, उधर ही दो-चार दियासलाई बेचनेवाले मिल जायँगे। मगर जब यह खयाल होता कि यह घर का काम है। वह तो एक दियासलाई की डिबिया लाने में शान घटती है, मगर अपने घर से एक मजदूर की तरह कागजात का पिसतारा[5] बाँधकर रोज ले जाते हैं, तब शर्म नहीं आती। मैं कहती हूँ कि इसमें भला शर्म की क्या बात है ? क्या कोई अपने घर का काम नहीं करता ? बड़ों-बड़ों को देखा है, जिनकी नाक पर मक्खी बैठने नहीं पाती वह घर को घर समझते हैं और चूल्हे में लगाने की मिट्टी भी बाजार से खरीदकर लाते हैं और फिर भी शर्म नहीं आती। एक तुम बड़े लाट साहब हो कि एक डिबिया दियासलाई

---

१ विवश। २ उपदेश, सीख। ३ बिसात। ४ निकल जाओ। ५ पोथा।

की लाते हुए शर्माते हो ! आखिर फिर क्या बात है, जो एक पैसे की दियासलाई न खरीद कर लाई गई ? अगर यह कह दो कि मैं खरीद कर हर चीज लाया करूँ तो यह भी सही। तुम अब घर में मेरी जगह पर वहीं बैठो और मैं बाजार से सौदा-सुलफ करके लाया करूँगी। इसमें आपकी इज्जत बढ़ेगी। जी चाहता है कि अपना मुँह नोच डालूँ या घर से कहीं चली जाऊँ। तौबह ! तौबह ! मेरी जान गजब में पड़ गई है। हर वक्त यही लगा रहता है।

————

चाय का सेट खरीदने पर

आखिर ले आये ना चाय का सेट ! मैं तो जानती थी कि तुम्हारी जेब में यह दस रुपये का नोट उछल रहा है और सुबह ही शाम में उसका वारा-न्यारा हो जायगा। फिर मैं जिस चीज को मना करूँ, भला तुम वह न लाओ ! इसकी तो तुमने कसम खाई है कि मेरा कहना न मानोगे, चाहे इधर का दुनिया उधर हो जाय। कुछ इस चाय के सेट ही पर नहीं है, बल्कि यह तो तुम्हारा दस्तूर हो गया है कि तुम वही काम जान-बूझकर करोगे, जिससे दूसरों को चिढ़ हो। अच्छा, भला यह बताओ कि इस चाय के सेट की क्या जरूरत थी ? अगर अभी न लाते तो कोई नुकसान हो जाता या यह कोई ऐसी चीज थी कि फिर न मिलती ? मगर नहीं, वह जो मैंने कहा है कि मना किया था। मेरी बातें तो तुमको जहर मालूम होती हैं। अच्छा तो वह पुराना सेट जो रक्खा है, तोड़कर फेंक दो; क्योंकि अब इस नये सेट के सामने उसकी क्या जरूरत है ? और फिर एक

वक्त में एक ही सेट की क्या जरूरत, बस, इस नये सेट को इस्तेमाल करो। खुदा की पनाह, तुमने भी फजूलखर्चियों की इन्तिहा[1] कर दी है। जिस चीज की जरूरत होती है उसका कभी ख्याल भी नहीं करते और जिस चीज की जरूरत नहीं होती उससे घर भर देते हो। अब यही देखो न कि सेट लाने की धुन हो गई तो एक नहीं, तीन-चार खरीद कर रख दिये हैं। अब सिवा इसके कि मुई नसीबन तोड़ डाले या अंधा करीम उसका सफाया बोल दे, और क्या होगा ? और एक रोज यही होना है। कोई कहाँ तक हिफाजत[2] करेगा। एक सेट की तो हिफाजत हो नहीं सकती, अब यह दो नये खरीद लाये। सारी प्याली गिरकर टूट जायँगी, और ये दस रुपये मिट्टी में मिल जायँगे। मगर तुमको इसका कहाँ ख्याल, जो दिल में आ गया, कर गुजरे। इससे बहस नहीं कि फायदा होगा या नुकसान। दस रुपये जेब के लिए बोझ हो रहे थे। अगर पचास रुपये का नोट होता तो वह भी वापस न आता और आज घर में चाय के सेटों की पूरी दूकान लगी होती। देखो, अपनी पसन्द का ऐसा ही ख्याल होता है। मैंने कहा था कि मेरे रोजमर्रह के इस्तेमाल के लिए दो साड़ियाँ ला दो। मगर चाय के सेट खरीदने के सामने साड़ियाँ याद न रहीं। पाँच रुपये की

---

१ हद। २ रक्षा।

साड़ियाँ न लाई गईं और दस रुपये चाय के सेट के लिए सर्फ कर दिये। कोई देखने-समझनेवाला हो तो बताये कि यह फूहड़पन नहीं तो क्या है। भला मेरे कहने का तुम पर क्या असर होता। और फिर मैं भी अहमक हूँ जो तुमको मना करती हूँ। इसका नतीजा तुम खुद भुगतोगे। तुम अपनी पूरी तनख्वाह से एक दिन में बाजार भर के चाय के सेट ही खरीद लो। उन्हीं को खाना, पीना और ओढ़ना। अब चाहे घर में फाके हों या लोग नंगे फिरें, तुम्हें इससे सरोकार नहीं है। बस, दस रुपये चाय के सेट पर खर्च कर दिये, न अपना ख्याल है, न घर का, न गिरस्ती का। आज आटा खतम हो गया, मसाले की हाँडियाँ खाली पड़ी हैं, नमक नहीं है; रुपये होते तो यह सब चीजें आ जातीं। लकड़ीवाली आई थी। आखिर रोज दो आने की लकड़ियाँ आती हैं। उससे कह देते तो एक महीने के खर्च के लिए तीन रुपये का लकड़ियाँ डाल जाती। मगर तुम्हें क्या परवाह! तुम्हारी तो वही मसल है कि बाहर अब्बे-तब्बे, घर में चूहे पक्के। मगर कम्बख्त जबान नहीं मानती। आँखों से देखती हूँ तो मजबूरन[1] कहना ही पड़ता है कि यह तनख्वाह देखो। और चार-चार दस-दस रुपये के चाय के सेट खरीदने पर उतारू हुए तो खरीदते ही चले जाते हैं।

---

१ लाचारी से।

अगर घर में बैठकर इतिजाम करना पड़े तो फिर आटे-दाल का भाव मालूम हो। आजकल के जमाने में रुपया तो दिखाई नहीं देता, गरानी का यह हाल है कि एक रुपये का आठ सेर आटा है। और तुम हो कि दस रुपये का एक सेट खरीदने पर सर्फ करते हो। सोचो तो, अगर आज यह दस रुपये होते तो कितने काम निकलते, जिनको मिनट भर में उड़ा दिया। मैं पूछती हूँ कि इन पुराने सेटों में कौन सी खराबी पैदा हो गई, जो नये सेट लाने की जरूरत पड़ी? क्या यह सेट सोने का है और ये मिट्टी के हैं? अगर ऐसा ही था तो इनको नाहक खरीद किया था। मगर समझाये कौन? आदमी के अक्ल हो तो वह खुद अपना आगा-पीछा सोच लेता है। अगर चाहते तो इन्हीं दस रुपयों में बच्चों के दस-बीस कपड़े तैयार हो जाते और साल भर तक कपड़ा बनवाने की फिक्र से छुट्टी पा जाते। मगर वह तो चाय का सेट खरीदने का सिर पर भूत सवार था, इसकी किसको फिक्र थी कि बच्चों के लिए कपड़े बनवाना है। और फिर चाय के सेट के आगे बच्चों का कहाँ ख्याल होता है। क्या कारूँ का खजाना कहीं से हाथ लग गया है? डेढ़ सौ रुपये की तनख्वाह न हुई, जागीर हो गई। अब दस रुपये के चाय के सेट चार आ गये, बैठने की कोई कुर्सी न आई। घर में कोई अलमारी नहीं है। अब आखिर यह सेट कहाँ रक्खे जायँगे? एक टूटा-फूटा संदूकचा है। चाहे उसमें चाय का

सेट रक्खो या और कुछ भर दो। घर में चूहों की फौज हर वक्त फिरा करती है। एक चूहेदान न लाना था न लाये। अब यह सेट चूहे कहीं बचने देंगे; एक ही दिन में चूर-चूर करके रख देंगे। जब आदमी दस रुपये का चाय का सेट खरीद कर लाये तो उसके रखने का सामान भी करना चाहिए। घर में इत्तिफाक[1] से मेहमान आ जायँ तो कहीं रहने का ठिकाना नहीं है। घर की चारपाइयाँ टुकड़े-टुकड़े हो रही हैं। इसकी कोई परवाह नहीं है। यह न ख्याल आया कि इन चारपाइयों को दुरुस्त करा लें, जिसमें ज्यादा से ज्यादा दो रुपये खर्च होते। और फिर यह हर वक्त काम आनेवाली चीज है। मगर वह जो दस रुपयेवाले सेट के बगैर जिन्दगी न होती। उफओह! कहाँ तक समझाऊँ, कहाँ तक कहूँ। मुझको तो यह बक-बक कोफ्त हो गई है! लेकिन क्या करूँ, घर के करीने के भी देखा नहीं जाता। मैं तो एक एक पैसा एहतियात[2] से खर्च करती हूँ कि कहीं ऐसा न हो, महीने में कम पड़ जाय या वक्त-बेवक्त के लिए घर में एक कानी कौड़ी न निकले; मगर तुम हो कि बगैर दस रुपयेवाले सेट के चाय नहीं पी सकते। मुझसे क्या कहते हो, मैंने ऐसे ऐसे हजारों सेट देख डाले हैं, लेकिन ऐसी फजूलखर्ची नहीं देखी। बड़े-बड़े घरों में भी इस तरह न होता होगा जैसा

---

१ संयोगवश। २ सोच-समझकर या बचा-बचाकर।

तुम करते हो। अब यही देखो ना, तुम्हारे पड़ोस में डिप्टी साहब रहते हैं, जिनकी तनख्वाह तुम्हारी तनख्वाह से तिगुनी-चौगुनी है। मगर एक मामूली सेट में चाय पीते हैं, जिसकी कीमत अगर बाजार में दर्याफ्त करूँ तो दो रुपये से ज्यादा न होगी। लेकिन तुम्हारी तरह दस रुपयेवाला चाय का सेट खरीदते नहीं फिरते हैं।

देखो ना, यही सबब तो है कि उनका आज हजारों रुपया बैंक में जमा है। तुम्हारी तरह थोड़े ही हैं कि अगर खुदा-न-ख्वास्ता कल कोई घर में बीमार हो जाय तो डाक्टर की फीस घर में न निकले। मैं जानती हूँ कि यह सेट उन्हीं लुच्चे-लफंगों के वास्ते खरीदा गया है, जिनको तुम अपना दोस्त कहते हो और जिन्होंने आज तक तुमको एक गिलास पानी के लिए भी न पूछा होगा। उनका क्या, मजे से आवेंगे बातें बनावेंगे और तुम उन्हें इस कीमती सेट से चाय पिलाना। चलो दस रुपये वसूल हो जायँगे। और जो यही दस रुपये रक्खे रहते तो घर के न-मालूम कितने काम निकलते। पुरानी जूती घर में पहने फिरते हो, इतनी तौफीक[1] नहीं हुई कि एक पम्प खरीद लाते, जिससे हैसियत बनती, जो जरूरी चीज थी। मुए चाय के सेट के लिए दस रुपये बर्बाद कर दिये। आखिर इन्सान को कुछ तो सोच-

---

१ समाई।

समझकर काम करना चाहिए। मैं अगर कहती हूँ तो बुराई होती है और न कहूँ तो भी नहीं बनता। घर का सारा हंगामा तो मेरे ही सिर पर रहता है। घर में अगर एक पैसे का तेल भी जायद[1] आ जाता है तो कहते हो, बद-इंतिजामी है, और दस रुपये का चाय का सेट खरीद लाये। यह बड़ा हुस्न ए-इंतिजाम[2] है! खुदा की पनाह! कोई कहाँ तक कहे, और अपनी जान खपावे, और कैसे कोई इंतिजाम करे! सैकड़ों के तकाजे सहती हूँ। घर का जो सौदा उधार लिया जाता है, उसकी कोई फिक्र नहीं है, बैठे-बैठे दस रुपये का चाय का सेट खरीद लाये। टके-टके अलमूनियम की पतीलियाँ मिलती हैं। दो महीने से कह रही हूँ कि चार पतीलियों की जरूरत है, खरीद लाओ। आज-कल पर उसको टालते रहते हो, और दस रुपये एक मिनट में एक सेट पर खर्च कर दिये। यह तो है आपकी आदमीयत और माकूलियत[3] फिर कहते हो कि औरतें फूहड़ होती हैं! अगर दस-दस रुपये करके बैंक में रखते तो आज कई हजार रुपये जमा होते। भला कहाँ इतनी सूझ-बूझ! औरतों को फूहड़ बनाने को हो उठे और एक सेट दस रुपये का खरीद लाये। एक इसी सेट ही पर क्या है, जाड़ा पूरा खत्म हो गया, लेकिन तुमसे एक स्वेटर न लाई गई; जैसे उसमें छप्पन टके खर्च होते। मुई दो-दो तीन-तीन रुपये की स्वेटरें मारी-मारी फिरती हैं, मगर

---

१ अधिक। २ प्रबंध की खूबी। ३ औचित्य।

उसके लिए रुपया कहा से आता ! मगर सेट के लिए दस रुपये बड़ी जल्दी निकल आये और चाय का सेट खरीद लाये। अब ऐसा मालूम होता है कि यह एक चाय का सेट उम्र भर साथ देगा और यही एक सेट एक पूरी उम्र टेर करेगा। देख लेना, जहाँ करीम ने एक दिन हाथ लगाया, बस मालूम होगा कि जैसे यह सेट खरीदा ही नहीं गया था। बस फिर एक दूसरा सेट खरीदकर लाओगे और फिर दस रुपये बर्बाद कर दोगे। बस इसी शौक में महीने भर की पूरी तनख्वाह चाय के सेटों की नजर हो जाया करेगी। तुम्हें दीन-ईमान की कसम है, अब रोज चाय का सेट ही खरीदा करना और घर की कोई जरूरत पूरी न होने देना। मेरे भी जो जी में आवेगा, फौरन् मँगा लिया करूँगी। मैं कहाँ तक अपना जा मारा करूँगी। जब घर में एक आदमी इस तरह फजूलखर्ची पर आमादा है तो उस घर का खुदा ही मालिक है ! अब तो मुझे यह डर मालूम होता है कि अगर मैं कोई चीज मँगाने के लिए कुछ दूँ तो तुम चाय का सेट खरीद लाओगे, और मैं यों ही हल्कान होती रहूँगी। तुमको क्या, तुम जब बाजार जाओगे, एक चाय का सेट खरीद लाओगे। मैं कहती हूँ कि अगर कुछ घर-गिरस्ती से बच रहेगा तो एक अकेले मेरे ही काम न आवेगा, और तुम से कोई सरोकार न होगा, हालाँकि तुम्हीं यह भी कहा करते हो कि इहतियात से खर्च करना चाहिए, और तुम्हीं

जाकर दस-दस रुपये का सेट खरीद लाते हो। अब बताओ, मैं अपना मुँह पीटूँ या क्या करूँ। मेरी मिट्टी गुम हो जाती है, जब देखती हूँ, हर महीने खर्च कम हो जाता है। तो मैं क्या करूँ? मेरी तो समझ में नहीं आता कि आखिर किस तरह खर्च पूरा करूँ। सोचा था कि अब की मर्तबा कुछ रुपयों को बचा लूँगी, लेकिन बचाने की कौन कहे, पूरा करना मुश्किल हो गया है, और तुम हो कि दस-दस रुपये का चाय का सेट खरीदते फिरते हो। फिर भला बचत क्या हो? और इस तरह कौन बचा सकता है? मैं तो एक-एक पैसा बचाती हूँ, मगर तुम जो दस-दस रुपये खर्च कर आते हो! यही रुपया आज घर में होता तो कोई चीज खरीद कर डाल देती, जो तुम्हारे वक्त-बेवक्त काम आती। मगर तुम को कौन समझा सकता है। तुम तो बेअंकुस के हाथी बने हुए हो; जो जी में आ गया, कर गुजरे, जो मुनासिब समझे, खाक-धूल उठा लाये। फिर दो-चार रुपये की भी नहीं, पूरे दस रुपये का चाय का सेट खरीद लाये। अगर तुम को ऐसा ही खर्च करना है तो बस आज तुम्हीं घर का इंतिजाम करो, मेरे इम्कान[1] से बाहर है। चाहे दस रुपये का सेट खरीदो, चाहे सौ रुपये का और चाहे पूरी तनख्वाह चाय के सेटों की खरीदारी पर लगा दो, मुझसे अब कुछ मतलब नहीं है।

---

१ बूते के बाहर।

ख्वाब[1] देखने के बाद

चलो चलो, तुम मुझे दीवाना बनाते हो ! मैं कभी न मानूँगी। आँखों की देखी कानों की सुनी बातों को झुटलाते हो। जिस तरह तुम खुद झूठ बोलते हो वैसे ही दूसरों को झूठा बनाते हो। सरीहन मैंने अपनी आँखों से देखा कि तुम एक औरत के पास लेटे हो—कानों से सुना कि तुमने एक जोड़ा तिलाई[2] बुन्दा ला देने को कहा और फिर कहते हो, कैसी बातें करती हो। मैं ऐसी बातें करती हूँ या तुम ख्वाहम ख्वाह जलाते हो ? तौबा-तौबा ! खुदा न करे, तुम्हारा जैसा किसी का नंगा उचक्का मियाँ हो। अरे मैं कहती हूँ कि तुम से एक तो बोझ उठाया नहीं जाता, एक दूसरी और तलाश कर ली ? मेरा क्या, तुम एक नहीं दस लाओ। मगर पहले उसका बार[3] बरदाश्त करने को तो पैदा कर लो। क्या इन्हीं चन्द टिकियों पर इतना इतराते हो ? मालूम होगा जब वह फर-माइशें करेगी। तुम्हारी सिट्टी गुम हो जायगी। भागते रास्ता

---

१ सपना। २ सोने के। ३ बोझ।

न मिलेगा। यहाँ तो एक साड़ी के लिए रिग-रिग कर मर जाती हूँ और तुम्हारे कानों पर जूँ नहीं रेंगती। जब वहाँ रोजाना फरमाइशें होंगी और फरमाइशों की बौछार होगी तो क्या करोगे ? कोई एक चीज थोड़े ही है, आज साड़ी लाओ, कल लैस-बेल-फीता लाओ, परसों वार्निश पम्प, साड़ी के लिए बुरूज, बालों के लिए क्रिप्स, सोप-लवेंडर—रेशमी रूमाल, असगरअली-मुहम्मदअली के यहाँ का इत्र, देहली का हलवासोहन, मुजफ्फरपुर की लीचियाँ, मलीहाबाद के आम। आज जो घर में मियाँ बने बैठे रहते हो, कल ही से मियाँऊँ हो जाओगे। इससे चौगुना तनख्वाह पाने लगोगे, तब भी तो पूरा न पड़ेगा। और मुझे क्या, लौंडी गुलाम की तरह कभी कोई चीज लाये, सामने फेंक दी, चलो फुर्सत हुई। मैं तो शुरू ही से तुम्हारे यह ढंग देख रही थी, और अपनी जगह यह सोच रही थी कि देखूँ, यह ऊँट किस कल बैठता है। आज वे तमाम बातें अपनी आँखों से देख रही हूँ। अब भी न यकीन आवे तो मुझसे ज्यादा कोई बेवकूफ नहीं। बस, अब आप अपनी ईं व आँ[1] रहने दीजिए। मैंने ख्वाब देख लिया, खूब समझ लिया। अब कहाँ-कहाँ करते हो ! गजब खुदा का. मेरी ही छाती पर मूँग दलते हो और मुझी से पूछते हो कहाँ। अब मैं ऐसी पागल नहीं हूँ। और फिर कोई

---

1 यह-वह अर्थात् बहानेबाजी।

दूसरा देखता, कहता, तो शायद यकीन न आता; वह तो अल्लाह को कुछ अच्छा करना मंजूर था, जो मुझे यह सब खेल दिखा दिया। वर्ना मैं हमेशा ऐसे चक्कर में रहती। मैं यही सोचा करती थी कि रोजाना दफ्तर में इतना काम रहता है कि आठ आठ बजे रात तक आदमी वहाँ से आवे! और फिर जिसकी मातहती में बीसियों क्लर्क हों, वह भी दफ्तर में इस कदर पिसता रहे। फिर आदमी जब इतना काम करके आये तो उसे आराम की भी जरूरत है। ऐसा भी क्या कि इधर आये और उधर सैर को निकल गये। तो रात के बारह बजे पूरी-पूरी रात गुजर गई। अब जाकर पता चला है। अब ये सारी कड़ियाँ मिल गईं कि उस अपनी होती-सोती के यहाँ रोज जाते हैं और घर में रोजाना बहाना-बाजी करते हैं। मैं भला सीधी-साधी क्या इस राज[1] को समझती! अगर किसी ने मेरे खानदान में ऐसा किया होता तो मुझे मालूम होता। मुझे आज तक खबर ही न थी कि सैर के हीले[2] आप एक दूसरी बेगम साहेबा की खिदमत-गुजारी[3] के लिए तशरीफ ले जाते हैं। अच्छा, जो आपका यह इरादा है तो बिसमिल्लाह, जहाँ चाहें जायँ, मैं भी अपने भाई जान के पास जाती हूँ। अब आना-वाना दरकिनार, हाँ, एक दिन मैं आपको कचेहरी की सैर कराऊँगी। फिर देखूँगी

---

१ रहस्य या भेद । २ बहाने । ३ सेवा ।

कि वह आपकी चहेती बेगम साहिबा क्या करती हैं। उफ्फोह, यह भी एक किस्मत की बात है कि मा-बाप ने उठा कर भाड़ में झोंक दिया। मैं खुदा के गजब से डरूँ और तुमको इतना भी ख्याल न आवे। और फिर यह दीदा-दिलेरी कि मेरे ही सामने उससे बातें भी हों और फर्माइशों की तामील[1] का वादा भी किया जाय। सुनते हो जी, किसी और भरोसे पर न रहना, यह न समझो कि तुम्हारी ये सब बातें देखकर मैं चुप रहूँगी। मैं भी वह तिगनी का नाच नचाऊँ कि देखते रहो। जरा मुझको भाई जान के पास पहुँच जाने दो, बस फिर तमाशा दिखाऊँगी। मुई कलमुही चुड़ैल कताला[2] से हँस हँस कर बातें करना भूल जाओगे, एक ही दिन में दिमाग सही हो जायगा। पूछते हो, तुम्हें शर्म नहीं आती। यह भी कोई जादू का खेल है कि मेरी आँखों को नजर लग गई थी जो मैंने गलत देखा। जो कुछ देखा सही देखा, और फिर कहती हूँ कि अपना और तुम्हारा गला एक कर दूँगी, तब उस मालजादी को घर के अन्दर कदम रखने दूँगी। यह भी कोई हँसी ठट्ठा है। क्या मजाल जो मेरे होते हुए कोई दूसरी आ जाय। जी मैं यह दून की भी नहीं हाँकती हूँ। अब मुझे बातों में न उड़ाओ। मैं ऐसी नन्हीं नादान नहीं हूँ। और फिर जब तक रही रही, मगर अब मैं दूध का दूध पानी

---

१ पूरा करना। २ हत्यारी।

का पानी किये बगैर न रहूँगी। अपनी और तुम्हारी बोटियाँ दाँतों से नोच डालूँगी। देखूँ तो भला, अब तुम घर से बाहर किस तरह कदम निकालोगे। कहीं ख्वाब-व-ख्याल की बातें ऐसी होती हैं। आँखों में धूल झोंकते हो! बड़े आये वहाँ से कहने कि ख्वाब सच्चा नहीं। जब मैंने अपनी आँखों से देख लिया तो फिर ख्वाब कैसे सच्चा नहीं है? तुम्हीं खुद एक मर्तबा अपना ख्वाब बयान कर रहे थे और कह रहे थे कि यह वाक़िया[1] बिलकुल तुम पर गुजरा है। अब कहो, मुझे झूठा बनाओ? तुम्हारा ख्वाब सच्चा है और सबका ख्वाब झूठा है! अब तुम तौबा-तौबा, कुरान का जामा पहन कर आओ तो भी मैं यकीन न करूँ--एक नहीं, लाख हलफ[2] उठाओ। तुम्हारा क्या, तुम तो दिन-रात यही करते रहते हो। सियाह को सफेद और सफेद को सियाह बनाना तुम्हारे बाएँ हाथ का काम है। मुझे क्या कहते हो, जो तुम्हारी हरकतों से वाकिफ[3] न हो, उससे अगर कहते तो शायद वह यकीन करता; मैं कैसे यकीन कर सकती हूँ? बीसियों मर्तबा उस घर में मैंने देखा कि दूधवाली आई और तुम उससे हँस-हँसकर बातें करने लगे। उस रोज चूड़ीवाली आई, घंटों उसकी चूड़ियाँ देखते रहे। शुबरातन की लड़की आई और झट से चार आने इनाम दे दिया। अब मैं क्या गदही हूँ—समझती नहीं—आँखों

---

१ घटना। २ कुरान हाथ में लेकर कसम खाना। ३ जानकार।

से देखती नहीं ? तौबा-तौबा ! क्या करते हो ? मेरी जबान न खुलवाओ, वर्ना सारी बखिया उधेड़कर रख दूँगी। तुम जानते हो, जो कुछ मैं करता हूँ, उसका हाल किसी को मालूम नहीं; मगर तुम्हारे फरिश्तों को भी नहीं मालूम है कि मुझे सब खबर हो जाती है। और फिर कोई अच्छी बात हो तो वह भी सही। कहीं ऐसी बातें छिपा करती हैं। खूब आये वहाँ से नहीं करने। एक नहीं, हजार कसमें खाओ और अपना ईमान खराब करो। तुम चाहे और जिसको धोखा दे दो, मगर मुझको धोखा नहीं दे सकते। अगर मेरा यह ख्वाब झूठा होता तो उससे पहले कोई ख्वाब देखती और कहने को होता कि हाँ माई, ख्वाब-व-ख्याल का क्या भरोसा, और ये बातें महेज ख्वाब की बातें हैं। जब तुम इस बात पर आमादा[१] हो गये हो तो घर का करीना[२] क्या दुरुस्त हो सकता है ? न मालूम क्या-क्या करना पड़ता है, तब जाकर कहीं घर का काम चलता है। अब इन्हीं चन्द टिक्कियों पर एक नया शौक हो गया है। बस चलिये, घर भर का सफाया ! अभी खैर, तनख्वाह चन्दे और जुरमाने के हीले से बाहर ही बाहर खर्च कर देते हो, मगर आगे बढ़कर तो तुम घर पर भी हाथ साफ करोगे। और ये दो-चार छल्ले अँगूठियाँ मेरे पास हैं, एक दिन इन पर हाथ साफ करोगे। अच्छा हुआ, जो अपना

---

१ उद्यत। २ ढंग।

निकलिस उस रोज सफाई कराने के लिए नहीं दिया, वर्ना वह भी हाथ से जाता और तुम यही कहते कि वह तो सुनार लेकर भाग गया। मैं क्या कोई झूठ कहती हूँ! इसी तरह इन्सान की आदत खराब होती है। खुदा न करे कि किसी मर्द को बदआदत[1] हो जाय। मैं हमेशा हमेशा के लिए बर्बाद हो गई। तुम्हारे बात बात में बिगड़ने और हर वक्त घर में मुँह फुलाये रहने का यही सबब था कि वह चुड़ैल हर वक्त सिर पर सवार रहती है। भला मेरी बातें तुमको क्या अच्छी लगतीं। और मैं बेचारी उस राज को क्या समझती—शुबरातन, ओ शुबरातन, मुई शुबरातन! जा हरामजादी, एक ताँगा ले आ। मैं अब इस घर में एक मिनट के लिए भी न रहूँगी। आग लगाऊँगी, दीवानों की तरह दीवारों से बातें करूँगी। मियाँ अपने रंग-महल में रहेंगे। मैं क्या कोई गुलाम या लौंडी हूँ; मैं भी अपने मा-बाप की दुलारी हूँ। अगर मेरे भाई जान सुन लें तो मुझे यहाँ साँस भी न लेने दें, रहने देने की कौन कहे! बस, मैंने भी तय कर लिया है कि अब इस घर का पानी मेरे लिए हराम है। मियाँ तुम भी अपना किया काम देखो और आराम से मजे उड़ाओ! मैं तुम्हारी राह में काँटे की तरह खटक रही थी, निकली जाती हूँ। मगर यह न समझिये कि मैं तुमको चैन से रहने दूँगी!

---

१ बुरी आदत।

अपने मेहर[1] का सवा लाख रुपया खड़े-खड़े गिनवा लूँगी, तब चैन आवेगा। खुदा का गजब—खुदा का कहेर टूटे उस मुरदार पर, जिसने हमारा सुहाग लूटने की कोशिश की! खैर, मैं तो चुप रहूँगी, मगर मेरा सब्र दोनों पर पड़ेगा! घर तो खराब हुआ ही है, अब इसको कौन बचा सकता है।

---

१ वह धन जो मुसलमानों के यहाँ पति पत्नी को देने के लिए लिख देता है।

ईद के मौके पर

हाँ-हाँ सुनती तो हूँ कि कल ईद होगी, फिर क्या करूँ ? खाली-खूली कहीं ईद होती है ? ईद के लिए सरो-सामान चाहिए, कपड़े-लत्ते चाहिए, खैर-खैरात को चाहिए, तेल-फुलेल चाहिए, सिवइयाँ चाहिए। बरस-बरस का त्योहार है, खुशी व खुर्रमी[1] का दिन ! मगर तुमको क्या परवाह, क्या फिक्र। बस, जबान से कह दिया कि कल ईद होगी। ईद क्या होगी, निगोड़े बदन के कपड़े तक तो ठीक नहीं हैं, चले हैं ईद की खुशखबरी सुनाने। ईद तुमको होगी, तुम्हारे होतों-सोतों को होगी; मुझको क्या ? जैसे आज वैसे कल निगोड़-मारा ! तुम्हारे यहाँ दूसरी ईद है, मगर क्या कि जैसे सब दिन वैसे आज ! भला इस तरह कहीं ईद होती है ? आज कितने रोज पहले से तुमसे कह रही हूँ कि कल को ईद का त्योहार आनेवाला है; और न सही तो मुन्ने के लिए एक जोड़ा जूता ला दो, कोई रेशमी कमीज बनवा दो, कोई

---

1 प्रफुल्लता।

अच्छी सी कामदार टोपी खरीद दो। मगर तुमको कहाँ फुर्सत ! तो भला ईद क्या होगी ! यह भी तकदीर की बात है। अपने मा-बाप के यहाँ होती तो मजाल थी कि वह हमारे अरमान[१] न निकालते। आज इस मासूम[२] की पहली ईद थी, वह भी क्या याद करेगा कि अब्बा के यहाँ ईद हुई। तौबा करो। अब एक तुमको मजहब से कोई गरज-वास्ता नहीं है, तो क्या सब तुम्हारी ही तरह हो जायँ ? और फिर मुझसे कहते हो कि कल ईद होगी। मुझको चिढ़ाते हो ? कुछ मुझको वाहर निकलना है या दुगाना[३] पढ़ने जाना है ? हाँ, हमारा मुन्ने अलबत्ता सबका मुँह देखकर रह जायगा। अच्छा, चलो सिवइयाँ ला दोगे, बस ना, तो क्या खाली सिवइयों से ईद हो जायगी ? और बस सिवइयों ही में ईद की खुशी है ? मैं तो कहती हूँ, यह भी काहे को लाओगे, रहने दो, फ़ुजूल-खर्ची होगी। तुम अपने किसी दोस्त के यहाँ जाओगे, खा-पी लेना। मैं मुई काहे में हूँ। मगर नहीं, तुमको अपने यार-अहबाब को भी सिवइयाँ खिलाना होंगी, इसी से तो कहते हो कि सिवइयाँ ला दूँ। तो जरा कान खोलकर सुन रक्खो कि यह घर है, माशा-अल्लाह दो-चार आदमी हैं; कोई होटल या सरा तो है नहीं कि सेर-आध सेर सिवइयों में काम चल जायगा और दाम भी खड़े हो जायँगे। अगर दस-बारह

---

१ मनोरथ या हौसला। २ अबोध। ३ ईद की नमाज।

दोस्त जहर मार करेंगे तो यहाँ भी पचास भूत और मौजूद हैं। नाई, धोबी, भिश्ती, मेहतर, चौकीदार, सभी को तो देना पड़ेगा। तुम समझते हो कि यों ही ईद हो जायगी। कहीं ऐसे भी ईद होती है। अपने मुँह के सवाद के लिए जो चाहे करो, लेकिन मेरे घर में फिर सिवइयाँ न लाना। इससे अच्छा है कि कहीं और इन्तिजाम करो। चले वहाँ से कहने कि सेर भर सिवइयाँ ला दूँ! मुझको तुम्हारी सिवइयों की जरूरत नहीं है। दस घर पास-पड़ोस के हैं। सभी के यहाँ आमद-रफ्त है, खाना-पीना, लेना-देना, आना-जाना रोज ही लगा रहता है। भला ये महल्लेवाले क्या कहेंगे कि कैसे मनहूस लोग महल्ले में बसते हैं, जो ईद के दिन एक प्याला सिवइयाँ भी नहीं भेज सकते। जो लेता-देता है, वह उसकी कद्र भी जानता-पहचानता है। तुमको क्या, तुम तो मजे से सूट डाँटे फिरते हो। तुम क्या जानो कि ईद किसे कहते हैं और बकरीद क्या है। गजब खुदा का, पूरा रमजान[1] गुजर गया, और तुमको होश न आया और आया भी तो कब, जब कल ईद है। तो फिर भला इस तरह क्या ईद होगी। कोई बड़ा-बूढ़ा इस जगह मौजूद होता तो तुमको बताता। और फिर अगर कभी तुमको इन चीजों से

---

१ वह पवित्र महीना जिसमें मुसलमान उपवास रखते हैं और जिसकी समाप्ति पर ईद होती है।

साबिका[1] होता तो जानते कि ईद किसे कहते हैं और ईद कैसी होती है। मुई शुबरातन आज दस रोज से तकाजे कर रही है कि बीवी, ईद आ रही है; अपने मुन्ने की कोई पुरानी-धुरानी गले की उतारन मेरे बच्चे को भी दे दो और मेरी तनख्वाह से दो-एक रुपया पेशगी दे दो। मगर मैं क्या करूँ, मेरी तो जान ग़जब में है। भला इस तरह कहीं ईद होती है। वह भी बाल-बच्चेदार आदमी है, उसको भी कुछ न कुछ देना है। करीम लाख बूढ़ा सही, अपाहिज सही, तो क्या हुआ, ईद तो सभी के लिए खुशी का दिन होता है। क्या तुम्हारी तरह लोग करते हैं कि ऐन मौके पर बड़ा इन्तिजाम याद आया और बहुत सामान की खरीदारी बताई तो सेर भर सिवइयों का लाना। आग लगे इन सिवइयों में और फिर—फिर कल जब ईद होगी? अच्छा, मैं कहती हूँ कि यह भी सही। तो अब तुम्हीं देखो कि आखिर वह सिवइयाँ भूनी कब जायँगी, और फिर अकेले सिवइयाँ खाकर ईद की खुशी मिल जायगी? ऐसा ही है तो फिर रोज इन्सान पाव भर सिवइयाँ पकाये और ईद मना ले। तुम मजाक उड़ाते हो! भला यह भी कोई बात है! समझते हो कि बस ईद के दिन सिवइयाँ खाली फाँक ली जायँगी; दूध, शकर, मेवा का कहीं जिक्र तक नहीं। आज मैं ऐसी सिवइयाँ पकाऊँ? यों तो बगैर सिवइयों के भी ईद हो जायगी, लेकिन

---

१ सामना।

अगर तुम सिवइयाँ लाये भी तो क्या, कल ईद का दिन होगा, लोग दुगाना पढ़कर वापस आवेंगे, तो ईद मिलने आवेंगे। आखिर कुछ उनकी भी खातिर-तवाजो[1] का सामान चाहिए कि नहीं? देखते हो कि कमरे का फर्श कितना मैला हो रहा है! सफेद-सफेद चाँदनी पर पान की पीक पड़ी हुई है। लोग अच्छे-अच्छे उजले कपड़े पहनकर आवेंगे तो क्या इसी पर बिठाओगे? वह भी कहेंगे कि कैसे बदतमीज के यहाँ ईद मिलने आये! आखिर शर्म व गैरत भी कोई चीज होती है। शर्मा-हुजूरी[2] में भी एक एक चम्मच सिवइयों का और एक एक पान इलायची दोगे तो कम से कम सौ आदमियों के लिए कत्था-डली-पान-इलायची-तम्बाकू भी मँगाना पड़ेगी। दो-एक तोला इतर भी होना चाहिए। क्या यों ही ईद हो जाती है? तुम अपने यार-दोस्तों के गले में बाँहें डालकर चिकने-चौड़े होकर चले जाना। बस चलिए, ईद हो गई। मैं कपड़े बदलूँ या न बदलूँ तुम्हारी जूतियों से, तुम्हारी बला से! अगर बच्चा ईदगाह तक न जा सके तो सही, तुम तो अपनी मटर-गश्ती कर ही आओगे। पूरा महीना बरकत का गुजर गया, दो-चार-दस की कौन कहे, एक रोजा भी भूलकर न रक्खा। अब आज ईद मनाने आये हैं! थू-थू कहीं इस तरह ईद होती है कि बस मुँह से कह दिया—कल ईद होगी। नाई आवेगा, आईना दिखावेगा, और न हो तो दो रुपया

---

१ आदर-सत्कार। २ लोकलज्जा।

उसको इनाम दिया जाय। मेहतरानी आवेगी, वह इनाम माँगेगी। धोबी आवेगा, वह इनाम माँगेगा। बरस-बरस का दिन है, मुन्ने मियाँ की खिलाई[1] को भी एक जोड़ा और कुछ नकद देना है। दर्वाजे पर सैकड़ों फकीर फेरी लगाने आवेंगे, तो क्या इन सबको यों ही वापस कर दिया जायगा! इनमें दस-बीस तो खैरात के मुसतहेक[2] भी होंगे। मेरी गैरत तो यह कभी गवारा नहीं करेगी और न मुझसे यह हो सकता है। और फिर अगर कभी ये सब बातें न देखी हों तो वह भी सही कि लाओ सेर भर सिवइयाँ मँगाकर उन्हें पेट में भर लूँ। बस, ईद हो गई। बात पर बात याद आती है। कोई एक बात हो तो कही जाय, हजारों झगड़े, हजारों बखेड़े किये जाते हैं, तब जाकर कहीं ईद होती है। पहलेपहल मुन्ने मियाँ ईदगाह जायँगे। क्या मैं उनको खाली-खूली भेज दूँगी? और न हो, दो-चार रुपये का गल्ला, एक रुपये की कौड़ियाँ लुटाने को होनी चाहिए, और नहीं क्या यों ही हाथ झुलाते चले गये और हाथ झुलाते चले आये? होगी ईद, जिसको होगी। उफ्फोह! मैं कहती हूँ अल्लाह तुम्हारी तरह किसी को न बनाये। सारे महल्ले में आज दो रोज से तैयारियाँ हो रही हैं। महीनों पहले से लोग घरों में कपड़े-लत्ते सिला रहे हैं; थानों पर थान घरों में चले आ रहे हैं; लोग अपने बाल-बच्चों के साथ खरीद-फरोख्त कर रहे हैं। कोई कोई चीज

---

१ दाई या बच्चे को खिलानेवाली। २ हकदार।

खरीदता है, कोई जूता देखता है, कोई कनटोप पसंद करता है, कोई वनयाइन माँग रहा है; लेकिन तुम हो कि कोई हौसला नहीं। सुबह के गये दस बजे रात को घर आये। न रोजे से मतलब, न नमाज से। तुमको क्या खबर कि ईद किसको कहते हैं, तुम क्या जानो कि ईद कब आती है और किस तरह ईद होती है। और यह सब तो जाने दो—इसका सवाल ही क्या कि नये कपड़े नहीं बने, पुराने कपड़े तक तो ठीक नहीं हैं। मुन्ने के चार जोड़े जूते बगैर पालिश खराब हो रहे हैं। न नया जूता लाये, न एक शीशी पालिश की लाये कि उन्हें साफ कर लेती। जब ईद-बकरीद भी नया कपड़ा, नया जूता न मयस्सर आये तो और कब मिलेगा! और फिर अगर मिला भी तो किस काम का! आज के दिन तो अमीर व गरीब सभी नई पोशाकें बदलते हैं। घरों में बीवियाँ नये-नये जेवर, नये-नये कपड़े पहनकर सज रही होंगी। एक मैं बदनसीब ऐसी हूँ कि नंगी-बूची बनी बैठी हूँ। न नया जेवर होता न सही, यह पुराने ही जेवर किसी सुनार से साफ करा देते। फिर किस बिरते पर कहते हो कि कल ईद होगी? एक साड़ी कामदानीवाले के यहाँ पन्द्रह रोज से पड़ी है। तुमसे यह भी न हो सका कि उसको ला देते। अच्छी-बुरी जो कुछ थी, खैर उसी को पहन लेती। ईद में नये कपड़े पहनना, खुशबू लगाना सवाब होता है। मगर यहाँ क्या मयस्सर कि सवाब कमाने का मौका

मिले। और फिर कहते हो कि ईद होगी। भाड़ में जायँ लैवेन्डर की शीशियाँ। मुझे तो उनके नाम से नफरत होती है। मैं खुदा-न-ख्वास्ता उनको क्यों लगाने लगी। बस, तुम्हीं को यह मुबारक रहें। मुझे खैर, अपनी कोई फिक्र नहीं है, बीसियों मर्तबा ईद की खुशियाँ मना चुकी हूँ। अल्लाह मेरे मा-बाप को रहती दुनिया तक जिन्दा रखे, मेरे सब अरमान निकल चुके हैं। न मुझको नये कपड़ों की जरूरत है, न मुझको नये जेवरों की हाजत है, न रुपये-पैसे की। बस, जी कुढ़ता है तो इससे कि अल्लाह का दिया एक चिछछड़ा नन्हा-मुन्ना मिला था, उसकी आज पहली ईद थी, और उसके लिए भी कुछ नहीं कर सकती हूँ। सचमुच अगर मुझे यों ही कुढ़ाओगे तो मैं आज ही सीधी तान दूँगी, और सुबह को ईद वहीं करके दम लूँगी। मुझसे तो यह नहीं होगा कि महल्ले के तमाम लड़के रंग-बिरंग के कपड़े पहने हुए ईद-गाह जाते होंगे और मेरा बच्चा सबका मुँह ताककर रह जायगा। किस काम की ऐसी ईद कि मैं अपने बक्स से झलाझल जोड़ा निकालकर पहनूँ और मासूम बच्चे को धुले हुए कपड़े पिन्हाऊँ! ईद तो बच्चों ही की होती है। उन्हीं की खुशी से घर भर की खुशी होती है। जब वह खुश न हुए तो हमारे पहनने-ओढ़ने से क्या फायदा? माना कि नन्हे के पास कई नेकर और कोट हैं, हैट है, मगर क्या ईद के दिन भी वही पहने? नई शेरवानी होती, उम्दा टोपी, पाजामा

होता। कौन साठ-पचास रुपये उसके कपड़ों की तैयारी में सर्फ हो जाते ! अभी मैं पिछली ईद देख चुकी हूँ। खाला बी के नवासे के लिए एक जोड़ कपड़ा सात रुपये में ऐसा तैयार हुआ कि देखने से ताल्लुक रखता था। क्या छप्पन टके लगे थे, कुल सिलाई वगैरह मिलाकर पंद्रह रुपये। अल्लाह रखे पंद्रह रुपये कहाँ आते हैं कहाँ जाते हैं। रुपया हाथ का मैल, जान का सदका माल ! तो फिर भला ईद क्या होगी ! उस दिन आदमी खुदा जाने क्या खर्च कर डालता है। और फिर सभी के बच्चे होते हैं। गजब खुदा का, आज चाँद-रात होगी और तुमको खबर नहीं कि एक पैसे का तो कोई सामान ईद के लिए लाते। फिर कहते हो कि कल ईद होगी। तुम जाना ईदगाह और मनाना ईद की खुशी। और सुनो, कल अपना तुम्हीं और कहीं इन्तिजाम भी कर लेना। यह न होगा कि तुम्हारे लिए दुनिया भर का सुबह-ही-सुबह पापड़ बेलूँगी। तुम्हारे मिलने-जुलनेवालों का सुबह ही से ताँता लग जायगा। तुमको या उनको नमाज-रोजे से कोई काम नहीं है, तमाशा देखने ईदगाह चले जाओगे। तो सुन रखो, मुझे इन झगड़ों से कोई सरोकार नहीं है। अपनी ऐसी-तैसी में जाय। जब मेरे बच्चे के कपड़े, जूते न आये तो फिर किसी की ईद न होगी। देखूँ, कैसे ईद करते हो !

———

टेलीफून पर बीवी का लेक्चर

ऐ मैं कहती हूँ सुनते हो, चीखते-चीखते गला बैठ जाता है और तुम हो कि जवाब तक नहीं देते ! ....अच्छा, बोलो चाहे न बोलो, तुम भी बिल्कुल अपने टेलीफून ही की तरह हो गये हो कि वह चुप है तो चुप है, फिर चाहे जितना हिलाओ-डुलाओ—गुम-सुम । तौबा, मेरी तो जान गजब में आ गई है। मैं पूछती हूँ कि तुम्हें हो क्या गया है ? इस निगोड़े टेलीफून को या तो यहाँ से उठा ले जाओ, कहीं और रखो या फिर इसे निकलवा दो । ख्वाहमख्वाह जब चीज सामने होती है तो उस से काम भी लेना पड़ता है। मगर इस कमबख्त का भी यह हाल है कि तौबा ही भली है। तुम्हारी जेब में पैसे हैं, तुम हर महीने तीस रुपये अदा किया करो। सच कहती हूँ कि मैं तो अब इससे आरी आ गई हूँ। जी चाहता है कि तोड़कर फेंक दूँ, नहीं तो तुम इसे उठा ले जाओ। पूछते हो हुआ क्या ? आज सुबह से कितनी बार मैंने उठाया। मगर इसे न बोलना था न बोला। आखिर झक मारकर रख दिया। फिर इससे क्या फायदा ? मैं कहती हूँ

कि अगर अब तुम्हारा जी भर गया हो तो इसे निकलवा दो, वरना मुझे कोफ्त हो जायगी। यही पैसे बचेंगे और किसी काम आयेंगे। मगर मैं जानती हूँ कि तुम भला कब मेरा कहना मानने लगे.........तुम कहते हो कि खराब हो गया होगा, तो क्या कभी टेलीफून खराब हुआ ही नहीं! आज दस बरस से टेलीफून लगा है, क्या इसी तरह खराब हुआ करता था? एक चीज ऐसी होती है कि खराब हो जाय तो बाजार में खड़े-खड़े अपने सामने दुरुस्त करा लो। लोहार, बढ़ई, सुनार सभी मिल सकते हैं। मगर इस कमबख्त की मरम्मत के लिए टेलीफून इक्सचेंज के दफ्तर से आदमी आते हैं। जब उनका जी चाहेगा किसी को भेज देंगे। उनको क्या गरज पड़ी है कि आपका टेलीफून खराब हो जाय तो फौरन् ही आदमी दौड़ा आये। वह जमाना नहीं रहा। अब तो उनके यहाँ हजारों टेलीफून हैं। कोई एक आप ही का टेलीफून नहीं है कि वह उसे दुरुस्त करने दौड़े चले आयें। अब जब उन्हें कभी इत्तिला होगी तो ठीक करेंगे, उस वक्त तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहिए। फिर यह कोई एक दिन की बात थोड़े ही है; यह बीमारी तो रोज की है। जरा रिसीवर उठाकर कान लगाओ तो सुनो, बोलने-हँसने की आवाजें बराबर आ रही हैं, लेकिन इधर कोई नहीं ध्यान देता। यह भी नहीं पूछता कि कौन है। मैं तो यह समझती हूँ कि जान-बूझकर नहीं बोलते। कभी-

कभी तो यह धोखा होने लगता है कि इक्सचेंजवालों ने हड़ताल कर दी है या फिर यह कहो कि सर्दियों में इस्तेमाल करने के लिए टेलीफूनवाले स्वेटर बुन रहे हैं और दोस्तों से गप लड़ाई जा रही होगी। भला यह भी कोई तरीक़ा है? टेलीफून को आज बरसों से बरतती चली आरही हूँ। मगर अब जो हालत हो गई है, पहले कभी ऐसी नहीं हुई थी। और जब जी चाहता है टेलीफून बोलता भी है। आज ही देखो, जितनी बार मैंने टेलीफून उठाया, किसी ने साँस भी नहीं ली और जब हाथ से रख दिया तो घंटी बोलने लगी। मैं कहती हूँ कि अगर तुम्हें टेलीफून रखना है तो फिर उसके साथ एक बाइसिकिल-सवार नौकर भी रखो कि जब कभी किसी नम्बर से मिलाना हो या बात करना हो तो उससे कहो कि वह इक्सचेंज जाय और वहाँ कहे कि जरा फलाँ नम्बर को फलाँ नम्बर से मिला दें .... तो और क्या मैं मज़ाक करती हूँ? इसमें हँसने की क्या बात है? कहो कि टेलीफूलवाले कहते हैं कि एक सेकेन्ड में टेलीफून मिला दिया जाता है। एक सेकेन्ड कौन कहे, भला वह दो-चार मिनट में मिला दें तो भी गनीमत है। मेरा तो तजुर्बा यह है कि मिनटों कान से चोगा लगाये रहिए और फिर भी कोई नहीं सुनता। इसी तरह घंटों सिर खपाना पड़ता है तब कहीं जाकर एक नम्बर बड़ी मुश्किल से मिल पाता है। फिर वह भी कहिए कुछ और

और मिलाया जाता है कुछ और दूसरा नम्बर। फिर अगर चाहो कि दूसरा नम्बर ले लो तो फिर इंतिजार करो। फिर सिर खपाओ। घंटों टिप-टिप करो तो बड़ी जोर से डाँटते हैं कि टेप मत करो। उई, मैंने ऐसी डाँट तो कभी तुम्हारी भी नहीं सुनी और यह मुये टेलीफूनवाले डाँटते हैं! सच कहती हूँ कि सामने यों हों तो मुँह नोच लूँ। एक तो बोलते नहीं। बोलते-बोलते बोलेंगे तो डाँटने लगेंगे। कभी कहेंगे, चीखिए मत। मैं पूछती हूँ कि आखिर वह कौन-सी तरकीब है कि यह लोग बोलें। फिर बोलते हैं तो गुर्राते हैं, लड़ते हैं। मैं तो ऐसे टेलीफून से बाज आई। अरे, मैं कहती हूँ कि जो किसी के घर डकैती हो रही हो या कोई किसी को मारे डाल रहा हो और चाहो कि फून पर पुलिस को इत्तिला कर दो तो वहाँ कोई बोलनेवाला नहीं और इतनी देर में बोलते हैं कि उस वक्त तक तो यहाँ खातमा हो जाय। किसी के घर में बीमार पड़ा हो या और कोई हादसा किसी को पेश आये, रात-बिरात किसी डाक्टर-हकीम को बुलाने की जरूरत हो तो क्या हो? वहाँ तो बीमार तड़प रहा है और इधर टेलीफूनवाले सो रहे हैं। सचमुच ऐसा मालूम होता है कि टेलीफूनवाले सो रहे हैं और उठने के लिए अँगड़ाइयाँ ले रहे हैं, मगर उठा नहीं जाता। अब अगर तुम फिर भी टेलीफून रखना चाहते हो तो रखो और अपना रुपया बरबाद करो। मेरा क्या, मुझे तो कभी-कभी किसी सहेली से

बातचीत करनी पड़ती है। सो मैंने तौबा कर ली है कि टेलीफून को कभी हाथ भी न लगाऊँगी। कौन सिर मारे? और कौन उनसे कहे कि भैया मेरी यह जरूरत है, जरा जल्दी नम्बर मिला दो। हाँ, अब यही एक तरकीब हो सकती है कि कोई आदमी उसके वास्ते भी मुकर्रर कर दिया जाय कि जब कहीं नम्बर मिलाना हो तो उसे इक्सचेंज भेजा जाय कि जरा किसी से कह दे कि मुझे इस नम्बर की जरूरत है। नौज मैं इससे अपना सिर फिराऊँ। जरा तमाशा तो देखो कि महीना खतम हुआ कि बिल चला आ रहा है। अदा करो, वरना टेलीफून तक काट देंगे। और जो टेलीफून के दफ्तर में शिकायत करो तो सच कहती हूँ कि वह भी जी जलाने-वाला जवाब देते हैं। कहते हैं कि मैं क्या करूँ, आदमी कम हैं, काम ज्यादा है। मैं कहती हूँ कि तो फिर अगर नहीं हो सकता तो इतना काम ही क्यों बढ़ा लिया है और जो दाम लेते हो तो ठीक से काम करो। भला यह भी कोई जवाब है। क्या किसी दफ्तर में इसी तरह किसी को जवाब मिलता है! उनको यह खुद समझना चाहिए कि मुझे उनके यहाँ आदमी होने या न होने से क्या मतलब? अरे भई, हर महीने टेलीफून के पैसे वसूल करते हो; मुझे भी अपने काम से काम है। मैं क्या जानूँ, तुम्हारे यहाँ कितने आदमी हैं या नहीं हैं। नहीं हैं तो और लगाओ। लो, और सुनो, एक दिन मुझे किसी नम्बर की जरूरत थी। वह उनका

क्या नाम है ? भला सा............। टेलीफून के दफ्तर से उनका नाम पूछा कि जरा बता दो। कहते हैं, वहाँ कोई नम्बर ही नहीं है। अब कहिए कि मैं क्या करूँ। बरसों से टेलीफून उनके यहाँ है, रोज बातचीत होती है और वह कहते हैं कि उनके यहाँ नम्बर क्या टेलीफून ही नहीं है। तो बस हद हो गई। अब कोई किससे शिकायत करे। खैर, यह तो कोई बात नहीं, उस दिन क्या था ? तुम्हीं ने किसी सरकारी अफसर से टेलीफून करने के वास्ते उनका नम्बर पूछा था, याद है कि नहीं...........इनकायरीवालों ने कैसा टका सा जवाब दिया था कि अभी उनका नम्बर ही उन्हें नहीं मालूम हुआ। और यह तो रोज की बात है कि जब रिसीवर उठाओ और नम्बर माँगने की कोशिश करो तो कोई शख्स उस वक्त तक बोलता ही नहीं जब तक दो-तीन मर्तबा टेप न करो और बोलेंगे भी तो कहेंगे कि एंडीकेशन ही नहीं मिलता है। भला यह जवाब कोई जवाब है ? मेरे तो तन-बदन में आग लग जाती है। पन्द्रह साल से टेलीफून लगा है और अब एंडीकेशन ही नहीं मिलता। एक जमाना ऐसा था कि यह कमबख्त टेलीफून सोना हराम कर देता था, जान गजब में आ जाती थी और अब यह हालत है कि बुलाओ तो भी नहीं बोलता। मेरा तो ऐसा जी घबरा गया है कि कमबख्त को उठा कर फेंक दूँ—बट्टे से चूरा-चूरा कर डालूँ। तौबा, मुए से जान गजब

में हो गई है। मैं इसी से तो कहती थी कि मुझे टेलीफून से बात करने की आदत न डलाओ। जब घर में एक चीज होती है तो सभी का जी चाहता है कि लाओ भाई जरा इससे कोई काम लो। मुझको क्या खबर थी कि टेलीफून इस्तेमाल करने में इतनी दर्दसरी करनी होती है।

टेलीफून तो रोज ही मेज पर रखा होता है, लेकिन दूसरों के रहम-करम पर। जब चाहे टेलीफूनवाले बोलें, जब जी न चाहे न बोलें। ऐ है, मुझे तो अक्सर यह भी देखना पड़ता है कि एक-दो बार रिसीवर हाथ में लिया और एक....दो ......तीन........ ...पन्द्रह........बीस मिनट तक बैठी रही। मगर वहाँ से किसी ने यह भी न पूछा कि क्या बात है ? जब कई मर्तबा टेप किया तो कहीं जाकर वहाँ से कोई बोला और बोला भी इस तरह कि मैं माँगती हूँ कोई नम्बर; वहाँ से दिया जाता है कोई दूसरा नम्बर। उनसे कहो कि यह नम्बर गलत है तो और कहीं से मिला देंगे और जब यह समझते हैं कि अब यह मानीटर से शिकायत करेंगे तो काफी देर तक के लिए खामोश हो जाते हैं, जवाब ही नहीं देते, यहाँ तक कि आजिज आकर टेलीफून रख देना पड़ता है। तो मैं तो अब इससे इतना आजिज आ चुकी हूँ कि एक मिनट के लिए भी नहीं चाहती कि टेलीफून मेरे यहाँ रहे। तुम रखना चाहते हो

रखो। मगर मैं कहे देती हूँ कि आइन्दा से यह टेलीफून यहाँ नहीं रहेगा, बल्कि तुम्हारे दफ्तर के कमरे में रहेगा। यहाँ जब यह सामने रखा होगा तो जी चाहेगा कि किसी से बात करूँ और ख्वाहमख्वाह हलकान होना पड़ेगा। मैं ऐसे टेलीफून से बे टेलीफून ही भली हूँ। क्या जिनके यहाँ टेलीफून नहीं है, उनका कोई काम रुक जाता है? यह कहो कि इससे जल्दी से वह काम हो सकता है कि किसी से कुछ पूछना चाहो तो पूछ लो। मगर वह भी जो टेलीफून सही तौर पर काम करे। अगर इसी तरह घंटों में एक नम्बर मिले तो उतनी देर में वहाँ जाकर खुद आदमी बात नहीं कर सकता? मगर तुम्हें तो मेरी बातों से इख्तिलाफ (विरोध) ही रहता है, तुम क्यों मानने लगे। तुम जानते हो कि टेलीफून रखने से शान बढ़ जाती है। तो तुम अपनी शान बढ़ाने के लिए दो आदमी और नौकर रख लो, बाहर हर वक्त चौकी-पहरा लगा लो, दरवाजे पर नौबत-नगाड़ा रखा दो। इस टेलीफून से तो वही अच्छा है। सचमुच इसमें हँसने की कोई बात नहीं है, मुझे तो कोफ्त (कुढ़न) सी हो गई है।